Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10.1

भारतीय संस्कृति

विनोद चन्द्र पाण्डे, एम.ए.
के. सिंह, एम.ए.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति

[INDIAN CULTURE]

गोरखपुर विश्वविद्यालय, बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० कॉम
के लिये अनिवार्य

स्वीकृत नये पाठ्यक्रमानुसार

●

प्राक्कथन लेखक
डॉ० पारसनाथ तिवारी, एम० ए०, डी० फिल०
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक
विनोद चन्द्र पांडे, एम०ए०
श्री के० सिंह, एम० ए०

●

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे (रु० २.५०) मात्र

प्रकाशन केन्द्र — लखनऊ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GORAKHPUR UNIVERSITY SYLLABUS
INDIAN CULTURE
(Compulsory)

पुस्तकालय तिथी ... पु०सं० 1346 भारती पुस्तकालय
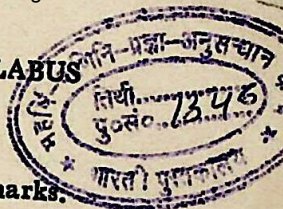
There shall be one paper carrying 100 marks.

Candidates should take this paper in B.A, or B. Com. or B. Sc. Part I. A candidate failing in Indian Culture only or in this paper and one other subject in the March/April examination will be allowed to appear in Indian Culture again in the Supplementary Examination (after Part I and Part II to be held in July or August following).

Provided always that a candidate who has passed once in the subject of Indian Culture, be not requried to appear again in this subject to qualify for Bachelor's degree.

1. GENESIS OF CULTURE AND CIVILIZATION : Definition of culture and civilization ; factors leading to the rise of civilization; characteristics of Indian culture.

2. LAND AND PEOPLE OF INDIA : Geographical background of Indian culture; Racial composition of Indian population; Evolution of Indian social organisation (Varna, Jati and Class).

3. RELIGIONS OF INDIA : Leading ideas of Hinduism, Buddhism, Jainism, Islam, Sikhism and Christianity; Renaissance and modern trends.

4. INDIAN ART : Characteristic features of Indian Architecture (Stupas, Vihars, Hindu temples, mosques and masoleums); Indian Sculpture (Gandhara and Mathura); Ajanta Paintings, Mughal Paintings.

5. INDIAN LITERATURE : Vedas, Upanishads, Ramayana, Mahabbharata, Gita, Kalidasa, Buddhist Tripitakas, Jaina Agamas, Sangam Literature, Chaitanya, Tulsidasa, Tukarama, Modern trends in Indian Lireraturе (Tagore, Bharati, K. M. Munshi and Prem Chand).

6. SCIENTIFIC THOUGHT : Development of Scientific Thought with special reference to India. Impact of Science and Technology on modern Indian Culture.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति की एक अनन्यसाधारण विशेषता यह है कि विभिन्न राज-
क परिस्थितियों से गुज़रते हुए ऊपर-ऊपर से उसकी बाह्य रूपरेखा में चाहे जितना
र्तन दीख पड़ता हो, लेकिन उसकी अन्तरंग आत्मा अभी ज्यों की त्यों बनी हुई
उसमें ऐसी संजीवनी शक्ति है कि जितनी भी विदेशी संस्कृतियाँ यहाँ आईं उन
को यह आत्मसात करती गई और विविधता में एकता की उसकी जो सहस्रों
पूर्व की विशेषता थी वह आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखकों ने सभ्यता और संस्कृति का अन्तर स्पष्ट करते हुए
त की भौगोलिक परिस्थियां को दृष्टि से यहाँ के निवासियों का नृतत्वशास्त्रीय
रण प्रस्तुत किया है और इस देश के विभिन्न धर्मों, कला-कृतियों, साहित्यिक
ाओं तथा वैज्ञानिक विचारधाराओं का परिचय दिया है जिससे भारतीय सभ्यता
सभी विशेषताएँ सुस्पष्ट हो जाती हैं। विद्यार्थियों की सुविधा की दृष्टि से लेखकों
संस्कृति जैसे गूढ़ विषय का विवेचन अत्यंत सरल शैली में किया है और यथास्थान
ोपयोगी प्रश्नों का भी संकेत कर दिया है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के नए पाठ्य-
के अनुसार भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में जितनी भी ज्ञातव्य बातें हैं सभी इस
क में मिल जाती हैं अतः वहाँ के परीक्षार्थियों के लिये यह पुस्तक भी लेखकों
अन्य पुस्तकों की भाँति उपयोगी सिद्ध होगी।

(डॉ०) पारसनाथ तिवारी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

1346

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय 1

संस्कृति और सभ्यता

(CULTURE AND CIVILIZATION)

प्रश्न 1—संस्कृति क्या है ? इसमें और सभ्यता में क्या अन्तर है ?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

संस्कृति की परिभाषा दीजिए और सभ्यता से उसका अन्तर स्पष्ट कीजिए।

संस्कृति का अर्थ—'संस्कृति' शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग में 'क्तिन' प्रत्यय लगने से बना है जिसका अर्थ 'सुधरी हुई स्थिति' होता है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए 'कल्चर' (Culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'कल्ट' के (Cult) और फ्रान्सीसी भाषा के 'कल्टे' शब्द से हुई है। इस शब्द का अर्थ है—धार्मिक संस्करण। आधुनिक युग में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ विभिन्न रूपों में किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से व्यापक और संकुचित दो रूपों में हुआ है और विभिन्न विद्वानों ने इस शब्द की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। यहाँ हम संस्कृति की प्रमुख परिभाषाएँ कर रहे हैं।—

(1) मुरे की परिभाषा—"मस्तिष्क, व्यवहार, गुण आदि का विकास और सृजन, शिक्षण और प्रशिक्षण द्वारा उन्नति और सौन्दर्य वृद्धि ही संस्कृति है।"

(2) टेलर की परिभाषा—"समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित वह सम्पूर्ण योग है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, विधि-विधान, रीति-रिवाज तथा गुण एवं आदतें सम्मिलित होती हैं।"

(3) मैथ्यू आर्नोल्ड की परिभाषा—"पूर्णता का अध्ययन, मिठास की अनासक्त खोज को ही संस्कृति कहते हैं।"

(4) स्वामी करपात्री जी की परिभाषा—इसी तरह लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक अभ्युदय के लिए उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि की भूषणभूत सम्यक चेष्टायें एवं हलचलें ही संस्कृति हैं।"

(5) टी० एस० इलियट की परिभाषा—"शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं का सेवन, इत्यादि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे सम्पूर्ण क्रियाएँ व कार्य जो शिष्टता पूर्वक करते हैं, उसकी संस्कृति के अंग हैं, जैसे घुड़दौड़, नावों की प्रतियोगिता, खानपान का प्रकार, संगीत, नृत्य इत्यादि।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) हुमायूँ कबीर की परिभाषा—"संस्कृति एक विचार है जिसकी साधारण या असाधारण रूप में परिभाषा नहीं हो सकती। संस्कृति का कोई निश्चित स्वभाव या चिह्न नहीं है जिसे संस्कृति का तत्व या विशेष्य माना जाय। यह सदैव महत्वपूर्ण धाराओं या शक्तियों का सम्मिश्रण है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि संस्कृति का अर्थ है—'संस्कार सम्पन्न जीवन'। अपने समाज से मनुष्य जो ज्ञान अर्जित करता है वही 'संस्कृति' है। 'संस्कृति' के अनुरूप ही समाज कार्य करता है और हर समाज की अपनी संस्कृति होती है जो सदैव प्रभावित होती रहती है। किसी देश की कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, आचार-व्यवहार आदि में उस देश की संस्कृति व्यक्त होती है।

सभ्यता की परिभाषा—मानव जो करता है वह सब उसकी सभ्यता का अङ्ग है। अति प्राचीन-काल से आज तक जो क्रियाएँ मानव ने की हैं वे सब उसकी सभ्यता के अन्तर्गत आती हैं। मानव ने अब तक बौद्धिक उन्नति, विचार निर्माण, शिष्टता आदि परिभाषाओं में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, उसने जो कुछ भी किया है वह सब उसकी सभ्यता के अन्तर्गत है। सत्य तो यह है कि मानव ने अपनी भौतिक उन्नति के हेतु जितने भी क्रिया-कलाप किये हैं वे सब उसकी सभ्यता के अङ्ग हैं। विभिन्न विद्वानों ने सभ्यता की भी विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

(1) मेकाइवर की परिभाषा—"हम जो हैं वह हमारी संस्कृति है, जिसका हम प्रयोग करते हैं वह हमारी सभ्यता है।"

(2) रास्की की परिभाषा—"सभ्यता अथवा सभ्य समाज संस्कृति के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है।"

(3) सुधीशधर द्विवेदी—"प्रकृति द्वारा दिये गये पदार्थों तथा शक्तियों का उपयोग कर मनुष्य ने अपने भौतिक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है उसी को हम सभ्यता कहते हैं।"

ये सभी परिभाषाएँ अपने-अपने ढंग से उचित हैं। वास्तविकता यह है कि भौतिक क्षेत्र में हमने जो उन्नति की है उसे सभ्यता के अन्तर्गत स्थान दिया जाना चाहिए और मानव अपनी आध्यात्मिक और संवेगात्मक उन्नति के लिए जो कुछ किया है वह सब उसकी संस्कृति के अङ्ग हैं।

संस्कृति और सभ्यता में अन्तर—संस्कृति और सभ्यता इन दोनों शब्दों का प्रयोग दैनिक जीवन में एक ही रूप में किया जाता है परन्तु दोनों में अन्तर अवश्य है। टेलर, हरकोविरस आदि विद्वान इन दोनों के अन्तर को नहीं समझ सके हैं और इस कारण उन्होंने इन दोनों को एक ही तत्व स्वीकार किया है। परन्तु मार्क्स, स्पेंगलर, टोयन्वी आदि विद्वान इन्हे भिन्न-भिन्न तत्व मानते हैं। नृतत्व शास्त्रियों के अनुसार मनुष्य जो कुछ करता है उसका फल सभ्यता है और जो कुछ सोचता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका फल संस्कृति है। सभ्यता संस्कृति का स्थूलतम रूप है। किसी व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर जब हम उसके बाह्य पहनावे और बाह्य व्यवहार से प्रभावित होते हैं तो हम उसे सभ्य कहते हैं परन्तु दूसरी ओर जब हम उसके चारित्रिक गुणों की मानसिक उपलब्धि अथवा आध्यात्मिक विभूति से परिचित होते हैं तो हम उसे सुसंस्कृत कहते हैं। वास्तव में यही सम्यता और संस्कृति का अन्तर है। एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है और संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। किसी देश की सभ्यता का पता उसके लोगों के ऊपरी रहन-सहन और भौतिक उन्नति से चलता है परन्तु संस्कृति का ज्ञान लोगों के आचारों और उनकी आत्मिक उन्नति से होता है। मोटर, हवाई जहाज, अच्छा भोजन, पोशाक आदि सब सम्यता के उपकरण हैं, संस्कृति के नहीं। संस्कृति का सम्बन्ध धार्मिक और कलात्मक उन्नति से है। सभ्यता केवल भौतिक स्तर की चीज है परन्तु संस्कृति सक्षम है। सभ्यता में संस्कृति इस प्रकार घुली-मिली हैं जैसे पुष्प में सुगन्ध। सभ्यता का विकास विशाल उपकरणों साज-सज्जा और सुख-सुविधा की सामग्रियों के बल पर होता है और इस कारण सभ्यता का निरन्तर उत्थान और पतन होता रहता है। संस्कृति के विषय में यह बात बहुत कम होती है। सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता से है परन्तु संस्कृति का सम्बन्ध मूल्यों से है। सभ्यता मनोविकारों का द्योतक है और संस्कृति आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है। सभ्यता की नक़ल करना आसान है परन्तु संस्कृति की नहीं। हम धोती-कुर्ता छोड़कर कोट-पैन्ट आसानी से ग्रहण कर सकते हैं परन्तु भारतीय संगीत के विद्यार्थी को पाश्चात्य संगीत को समझने में काफी प्रयास करना होगा। सभ्यता भौतिक साधनों से सँवरती है और संस्कृति कला, धर्म, साहित्य, सामाजिक संस्थाएँ, एवं व्यवहारों से। सभ्यता व्यक्त रूप है और संस्कृति अव्यक्त। सभ्यता के उपकरण शीघ्र ही एकत्र किये जा सकते हैं परन्तु संस्कृति के उपकरणों को जुटाने में समय लगता है। सभ्यता का सम्बन्ध हमारे विचारों से है जब कि संस्कृति का सम्बन्ध हमारे आचारों से। आधुनिक युग की सभ्यता अत्यन्त विकसित है परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से हम पिछड़े हैं। प्राचीन युग में रोम की सभ्यता अत्यन्त विकसित थी परन्तु भारत में सांस्कृतिक उत्थान अधिक हुआ था।

प्रश्न 2—संस्कृति और सभ्यता के मूल आधारों का वर्णन कीजिए। कौन-कौन से तत्व उसके स्वरूप को निश्चित करते हैं?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

अति प्राचीन-काल से आज तक मनुष्य जहाँ प्रकृति के परिधानों का उपभोग करता आ रहा है वहाँ निरन्तर प्रकृति से संघर्ष भी करता आ रहा है। इस संघर्ष में जब मनुष्य ने एक की उपेक्षा और अनेक की महत्ता को समझा उसी समय सामाजिकता एवं सभ्यता का जन्म हुआ। अपने सम्मुख आने वाली समस्त बाधाओं को दूर करने के लिए उसने विभिन्न प्रकार की सामग्री एकत्र की और शनैः शनैः सभ्यता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित होती गई। सुख-सुविधा की तमाम भौतिक सामग्रियाँ और सामाजिक संस्थायें सभ्यता की अभिव्यक्ति हैं। जब भौतिक सुखों के विभिन्न साधनों को मनुष्य ने खोज लिया तो उसकी दृष्टि और भी आगे गई। वह केवल मात्र भौतिक सुख से सन्तुष्ट न हुआ और अपनी अभिव्यक्ति हेतु या ज्ञान पिपासा की पूर्ति के हेतु कलात्मक सृजन और भौतिक चिन्तन में लग गया। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में 'संस्कृति' का जन्म हुआ। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य का आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास हुआ। उसके सम्मुख अनेक सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्रश्न उठ खड़े हुए। उन्हीं प्रश्नों को हल किये जाने के फलस्वरूप इन दार्शनिक, धार्मिक राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों का विकास हुआ जिनके समुदाय को हम 'संस्कृति' के नाम से पुकारते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पहले सभ्यता का विकास हुआ होगा और उसके बाद ही संस्कृति प्रकाश में आई होगी।

संस्कृति के निर्णायक तत्व—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि संस्कृति का सम्बन्ध हमारे आचारों से है। वे हमारी आध्यात्मिक और आत्मिक उन्नति से सम्बन्धित हैं। संस्कृति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हैं जिनका उल्लेख यहाँ सक्षेप में किया जा रहा है :—

(1) भाषा—किसी भी देश या समाज की संस्कृति उसकी भाषा पर निर्भर करती है। वास्तव में संस्कृति की उत्पत्ति ही तभी हुई होगी जब कि मनुष्य ने भाषा को खोज निकला होगा। मानसिक बनावट ही संस्कृति की मूल है और भाषा मानसिक विचारों की अभिव्यक्ति है। इसलिए निःसन्देह संस्कृति का मूल आधार भाषा है।

(2) भूगोल—संस्कृति को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख तत्व भूगोल है। किसी देश की संस्कृति एवं सभ्यता पर उस देश की भौलोलिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। उत्तरी और दक्षिणी भारत एक ही देश के अंग हैं परन्तु भौगोलिक वातावरण के फल स्वरूप उनकी सभ्यता में अन्तर दिखलाई पड़ता है। वातावरण के अन्तर के परिणाम स्वरूप ही इंगलैण्ड की सभ्यता, टुण्ड्रा की सभ्यता और भारतीय सभ्यता में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है।

(3) धर्म—सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित करने वाला एक अन्य तत्व धर्म है। संस्कृति को प्रभावित करने का यह एक प्रधान घटक रहा है। अतीत युग में धर्म ने सांस्कृतिक एकता को बनाये रखा।

(4) इतिहास—किसी देश का इतिहास उस देश की संस्कृति को प्रभावित करता है। भारतवर्ष का इतिहास अनेक जातियों और कबीलों के आगमन एवं समन्वय का इतिहास है। इसलिए यहाँ अनेक प्रकार की सभ्यताओं का मधुर समन्वय दिखलाई पड़ता है। यहाँ यदि अजन्ता की गुफाएँ हैं तो ताजमहल भी। हिन्दू धर्म के मानने वाले हैं तो मुसलमान और ईसाई भी हैं। इतिहास सभ्यता का आकलन प्रस्तुत करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) अन्य तत्व—उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त अन्य तत्व भी संस्कृति को प्रभावित करते हैं। इन तत्वों में रीति-रिवाज, आचार-विचार, शिक्षा, अन्य देशों से पारस्परिक सम्बन्ध आदि उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अनेक तत्व सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित करते हैं और इन तत्वों के आधार पर ही किसी देश अथवा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का स्वरूप निश्चित होता है।

प्रश्न 3—भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति के कौन-कौन से तत्व आपकी दृष्टि में स्थायी और महत्वपूर्ण हैं ? **(गोरखपुर विश्वविद्यालय)**

प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है जो अन्य संस्कृतियों पर अपना प्रभाव छोड़ती है इस प्रकार सभी संस्कृतियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। भारत की भी अपनी एक संस्कृति है। इसने अन्य देशों की संस्कृतियों को प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति की छाप विभिन्न देशों की संस्कृतियों पर पड़ी है। अनेक देशों की संस्कृतियाँ आईं और समाप्त हो गईं परन्तु भारतीय संस्कृति अभी तक अक्षुण्ण बनी हुई है। इस देश की संस्कृति का गुणगान विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। प्रो० मैक्हाइएड ने लिखा है, "चीन को छोड़कर कोई भी ऐसा देश नहीं है जो अपनी भाषा और साहित्य, अपने धार्मिक विश्वास और कार्मकाण्ड तथा अपनी रीति-रवाजों का तीन सहस्र वर्षों से अधिक का अटूट विकास प्रस्तुत कर सके।" श्री अरविंद का कथन है, "तीन सहस्र वर्षों से अधिक पहले प्रारम्भ होने वाली और अभी तक निःशेष रहने वाली ऐसी महान और मानसिक क्रियाशीलता अद्वितीय है और इस बात का सर्वोत्तम तथा अकाट्य प्रमाण है कि इस संस्कृति में कुछ असाधारण स्वस्थ और जीवन्त तत्व हैं।" यहाँ हम भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्वों अथवा विशेषताओं की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) प्राचीनता—राष्ट्रकवि मैथली शरण गुप्त ने लिखा है कि—

"हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
संसार की भवभूतियों का यह प्रथम भंडार है
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले वहीं विस्तार है।"

वास्तव में इस देश की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। जिस समय संसार के अन्य देशों के लोग जंगली जीवन व्यतीत कर रहे थे उस समय भारत में एक उच्च कोटि की संस्कृति फलीभूत हो रही थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदायी में प्राप्त विभिन्न अवशेष इस संस्कृति की प्राचीनता को स्पष्ट करते हैं। भारतीय संस्कृति मिश्र, बेबीलोन, यूनान, और रोम की संस्कृतियों से भी प्राचीन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) चिरस्थायित्व—भारतीय संस्कृति की एक विशेषता यह रही है कि जहाँ अन्य देशों की संस्कृतियाँ बदलते हुए परिवर्तनों में काल-कवलित हो गई हैं, भारतीय संस्कृति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। यूनान, मिश्र और रोम आदि की संस्कृतियों ने छिन्न-भिन्न होकर अनेक रूपों में परिवर्तन कर लिया परन्तु भारतीय संस्कृति आज भी अखंडित और अक्षुण्ण बनी हुई है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है; "इस प्रकार हम आदि काल में ही सभ्यता और संस्कृति का आरम्भ देखते हैं जो आने वाले युगों में समृद्धिशाली और प्रचुर होता रहा और कई परिवर्तनों के बावजूद भी हमारे समय तक जारी रहा है।" प्रसिद्ध शायर इकबाल ने लिखा है—

> यूनानो-मिस्रो-रूमाँ सब मिट गये जहाँ से,
> बाकी अभी है लेकिन नामों निशां हमारा।
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
> सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा॥

जहां तक प्राचीनता का प्रश्न है, भारतीय संस्कृति की समानता चीन की संस्कृति से स्थापित की जा सकती है।

(3) समन्वयशील—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता उसकी समवन्य-शीलता है। इस पावन धरती पर विभिन्न जातियों का पदार्पण हुआ है, अनेक विदेशी आक्रमण हुए और सभी जातियों एवं विदेशी आक्रमणकारियों ने भारतीय संस्कृति को अपने रंग में रङ्गना चाहा परन्तु वे ऐसा करने में सक्षम न हुए। दूसरी ओर विभिन्न संस्कृतियां इस संस्कृति की धारा प्रवाह में स्वयं विलीन हो गई। हूण, शक, कुषाण, आदि सभी भारतीय समाज में मिल गये। विभिन्न देशों की संस्कृतियों ने इस संस्कृति को आत्मसात् कर लिया। डाडवेल लिखता है,

"भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है, जिसमें बहुत सी नदियाँ आ-आकर समाती गई हैं।"

(4) आध्यात्मिकता—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता आध्या-त्मिकता है। भारतीय दृष्टिकोण सदैव से ही धर्म प्रधान रहा है। यहाँ की समस्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाएँ तथा साहित्य, कला आदि का केन्द्र-बिन्दु धर्म ही रहा है। धर्म ने यहाँ की जनता को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया है। भारतीयों ने सदैव इहलोक की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है और आध्यात्मिक चिन्तन ही यहाँ के लोगों का मुख्य कार्य रहा है। परन्तु इस आध्या-त्मिकता के फलस्वरूप कभी भी भौतिकता का तिरस्कार नहीं किया गया है। संस्कृति की धार्मिक भावनाओं ने कभी भौतिकता की अवहेलना नहीं की। यहां अध्यात्मिकता और भौतिकता का अद्भुत समन्वय देखने को मिला है।

(5) सहिष्णुता—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता उसकी सहि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्णुता रही है। यूनान और रोम में जरा से मतभेद के फलस्वरूप भयंकर नरसंहार हुआ। मारकस औरीलियस ने ईसाई धर्म को रोमन के प्रतिकूल देखकर ईसाईयों का वध कराया। शर्लमैन ने तलवार के वल पर धर्म-परिवर्तन कराया। परन्तु इसके विपरीत अशोक महान् ने दूसरे धर्म की निन्दा करना या उसे बुरा कहना पाप वतलाया। यद्यपि यहाँ मुसलमान, यहूदी, पारसी, ईसाई आदि सभी आये परन्तु सभी के साथ उदारता का व्यवहार किया गया। भारत में हिन्दू, जैन, बौद्ध, और सिक्ख धर्मों का विकास हुआ परन्तु धर्म के नाम पर वह भीषण रक्तपात यहाँ देखने को नहीं मिला जो अन्य देशों में देखने को मिला।

(6) अनेकता में एकता—भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं। यहाँ काश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक और सौराष्ट्र से लेकर असम तक अनेक प्रकार के रंगरूप, वेष-भूषा, भाषाओं के वोलने वाले लोग रहते हैं। परन्तु एक ही सांस्कृतिक रंग सब के ऊपर चढ़ा हुआ है। 52 जातियों, 500 से अधिक वोलियों और 30 लिपियों के होते हुए भी यहाँ मौलिक एकता के दर्शन होते हैं।

(7) सर्वांगीणता—भारतीय संस्कृति सर्वांगीणता है। अनेक पश्चात्य विद्वानों ने भारतीय संस्कृति पर धार्मिकता का आरोप लगा कर यह कहा है कि यह वैराग्य और सन्यास की भावना को अधिक वल देती है तथा एकांगी है परन्तु उनका यह आरोप उचित नहीं है। यहाँ आध्यात्मिकता और भौतिकता के अद्भुत समन्वय के दर्शन होते हैं। वर्णाश्रम के द्वारा सामाजिक समन्वय, ज्ञान, भक्ति और कर्म के द्वारा धार्मिक समन्वय और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वारा सम्पूर्ण भारतीय जीवन में समन्वय स्थापित किया गया है। यह संस्कृति, साहित्य और कला, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, सुख एवं दुःख म समन्वय स्थापित करती है। इस संस्कृति का दृष्टिकोण सदैव व्यापक रहा है।

(8) चिन्तन की प्रधानता—किसी भी देश के धर्म, दर्शन और संस्कृति में यदि चिन्तन की स्वतन्त्रता नहीं होती तो वह व्यर्थ है। भारत में चिन्तन की सदैव से ही प्रधानता रही है। यहाँ अनेक मत-मतान्तरों और विभिन्न दर्शनों की उत्पत्ति हुई। अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का विकास हुआ। यह इस चिन्तन की प्रधानता और स्वतन्त्रता का ही परिणाम है।

(8) कल्याण की भावना—भारत अति प्राचीन काल से ही समस्त संसार के कल्याण की बात करता रहा है। यहाँ अति प्राचीन काल से वसुधैव कुटुम्वकम् की भावना प्रवल रही है। यहाँ के लोगों ने अपने समस्त मतभेदों को मिटाकर मानव-कल्याण का नारा बुलन्द किया है। विदेशों में इस संस्कृति का प्रसार इसीलिए अधिक हुआ कि यह मानव-कल्याण की भावना पर अधिक वल देती थी।

(9) जीवन्तमान संस्कृति—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता यह है कि यह सदैव से जीवन्तमान रही है। इसका शरीर वदलता रहा है परन्तु आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही रही है। भारतीय संस्कृति में अनुपम जीवन्त-शक्ति दिखलाई पड़ती है जो विभिन्न जीर्ण-शीर्ण अवयवों को त्यागकर नवीन शरीर धारण करती आई है। यह संस्कृति सदैव जीवित रही है और आगे भी जीवित रहेगी।

(10) व्यापकता—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता उसकी व्यापकता रही है। इस संस्कृति का सुदूर देशों में अत्यधिक प्रसार हुआ और सुदूर देशों में उसके चिन्ह आज भी दिखलाई पड़ते हैं। इस संस्कृति के सम्बन्ध में सिल्वेन लेवी लिखता है, "फारस से चीन सागर तक, साइबेरिया के बर्फीले क्षेत्रों से जावा और बोर्नियो के द्वीपों तक और प्रशान्त सागरीय द्वीपों से सोकोतरा तक भारत ने अपने विश्वासों, कथाओं तथा सभ्यता का प्रसार किया है। शताब्दियों के लम्बे अर्से में उसने चतुर्थांश मानव जाति के ऊपर अमिट छाप छोड़ रखी है। विश्व इतिहास में उसे अपना वह गौरवपूर्ण स्थान पाने का अधिकार है जिसे अज्ञान के कारण बहुत दिनों तक नहीं दिया गया है और मानवता की आत्मा का प्रतिनिधित्व करने वाली महान् जातियों में अपना स्थान पाने का उसे पूर्ण अधिकार है।"

प्रश्न 4—विभिन्नता में एकता भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। स्पष्टीकरण कीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति भिन्नता में एकता प्रदर्शित करती है। इसका क्या तात्पर्य है? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति भिन्नता में एकता प्रकट करती है। इसकी व्याख्या कीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

सिद्ध कीजिए कि विविधता और समय-समय पर परिवर्तनों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता बनी रहती है।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृतिक भेदों में अभेद की सूचना है। उपर्युक्त कथन की समीक्षा करते हुए भारत की मौलिक एकता व्यक्त कीजिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भाषा, विश्वास, रंग, भोजन, आदि की विभिन्नता होते हुए भी भारत एक संस्कृतिक इकाई है। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति की एक मूल विशेषता विविधिता में एकता है। यहाँ अनेक जातियाँ, अनेक धर्म और अनेक भाषाओं के बोलने वाले लोग निवास करते हैं। एक स्थान की जलवायु दूसरे स्थान की जलवायु से पूरी तरह भिन्न है परन्तु इस सब के बावजूद एक प्रकार की एकता के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति समुद्र में भाव, भाषा, जाति, क्षेत्र आदि की अनेक नदियाँ गिरती हैं परन्तु संस्कृति-समुद्र एक ही। पं० जवाहर लाल नेहरू ने भारतीय संस्कृति की विभिन्नता में एकता का उल्लेख करते हुए लिखा है, भारत का सिंहालोकन करने वाले भारत की अनेकता और विभिन्नता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं। वे भारत की एकता नहीं देख पाते, यद्यपि युगों-युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान और मौलिक तत्व रहा है। यहाँ हम इस संस्कृति की विभिन्नता में एकता का उल्लेख संक्षेप में करेंगे।

(1) भारतीय संस्कृति की विविधता—भारत एक विशाल देश है। किसी विद्वान ने इसे विश्व का संक्षिप्त संग्रहलय कहा है। यह देश इतना विशाल है कि अनेक विद्वान तो इसे एक उपमहाद्वीप कहते हैं। आकार में तो यह इंगलैंड से 20 गुना बड़ा है और रूस को छोड़ते हुए यह समस्त योरोप के बराबर है। संसार की 1/5 जनसंख्या यहाँ निवास करती है। इसदेश में लगभग 200 जतियाँ निवास करती हैं और इस कारण अनेक विद्वान इसे जातियों का अजायब घर कहते हैं। 169 भाषाएं यहा बोली जातीं हैं और बोलियोंकी संख्या तो 544 है। यहाँ अनेक धर्मों के मानने वाले लोग निवास करते हैं। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, इस्लाम और ईसाई के धर्म के मानने वाले सभी यहाँ दिखलाई पड़ते हैं। यद्यपि ब्राह्मण धर्म को मानने वालों की संख्या सबसे अधिक है परन्तु अन्यधर्मों के अनुयायियों की संख्या भी काफी है। प्रमुख धर्म अनेक सम्प्रदायों में बंटे हुए हैं। विभिन्न धर्मानुयायियों के आचार-विचार, रहन-सहन आदि में पर्याप्त अन्तर है। भौगोलिक दृष्टि से भी काफी भिन्नता है। कहीं की जलवायु काफी गर्म है तो कहीं की अपेक्षाकृत ठंडी। कहीं शुष्क जलवायु है तो कहीं आर्द्र। कहीं के लोग काफी उन्नत है तो कहीं के काफी पिछड़े हुए। इस प्रकार यहाँ सभी स्तरों और सभी क्षेत्रों में विभिन्नता के दर्शन होते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य, महाराजा अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, अकबर और औरंगजेब आदि शक्तिशाली नरेशों ने यहाँ शक्तिशाली राज्य स्थापित किये परन्तु फिर भी वे समस्त भारत पर अपना अधिकार न कर सके। दक्षिण भारत स्वतन्त्र ही रहा। उत्तरी भारत के रहने वाले निवासियों का रहन-सहन दक्षिण भारत के रहने वाले निवासियों से काफी भिन्न है। यही नहीं एक-एक प्रदेश में भिन्नता के दर्शन होते हैं। बोलियों का तो यह हाल कि हर 20 मील के ऊपर बोली बदल जाती है। इस तरह भारत में सर्वत्र विभिन्नता दिखाई पड़ती है।

(2) भारतीय संस्कृति की एकता—यह ठीक है कि भारत मे सर्वत्र विभिन्नता दर्शन होते हैं परन्तु इस विभि न्नता में भी एकता दिखलाई पड़ती है। भौगोलिकी, धार्मिक, आदि सभी क्षत्रों में अलग अलग होने पर भी भारतीय एक रहे हैं और यहाँ की संस्कृति इस एकता को स्थापित करती रही है। यहाँ हम भारतीय संस्कृति की एकता का उल्लेख संक्षेप में करेंगे।

(1) भौगोलिक एकता—भौगोलिक दृष्टि से भारत एक देश है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत, और शेष तीन ओर समुद्र है। इसमें कोई ऐसा ऊँचा पहाड़ या नदी नहीं है जिसको पार कर सकना या एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकना कठिन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस देश में भ्रमण करते हुए मनुष्य कभी यह नहीं कहता कि वह किसी दूसरे देश में घूम रहा है। प्रवासी दैव से ही इसे एक देश मानते रहे हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है, "समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश है—वह भारत है और वहाँ के निवासी भारत की सन्तान कहलाते हैं।" प्राचीन काल से ही भारत सात नगरों, सात नदियों, और सात पर्वतों वाला देश कहलाता है। यहाँ की यह भौगोलिक एकता सदैव बनी रही है।

(2) राजनीतिक एकता--भारत में प्रचीन काल से अनेक छोटे-छोटे राज्य रहे परन्तु राजनीतिक एकता स्थापित करने का सदैव प्रयास किया गया। शक्तिशाली राजा सम्पूर्ण भारत को जीतकर चक्रवर्ती पद प्राप्त करने का प्रयास करते थे और अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय यज्ञ किया करते थे। चाणक्य ने हिमालय से समुद्र-पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण भूमि को एक चक्रवर्ती सम्राट का क्षेत्र कहा है। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, अकबर आदि ने यहाँ एक साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रकार यहाँ राजनीतिक एकता की भावना सदैव दृढ़ रही।

(3) धार्मिक एकता—भारत में अनेक धर्म और सम्प्रदाय विद्यमान हैं। इनमें तीन बड़े धर्मों—ब्राह्मण धर्म, जैनधर्म, और बौद्ध धर्म का जन्म भारत में ही हुआ। इसके साथ ही कुछ धर्म विदेशों से भी आये। इनमें इस्लाम और ईसाई धर्म उल्लेखनीय हैं। सम्प्रदायों की तो यहाँ गणना ही नहीं की जा सकती। परन्तु इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक मौलिक एकता दिखलाई पड़ती है। सभी धर्मों के आचार-शास्त्र एक से हैं और केवल मात्र कर्मकाण्ड में अन्तर है सभी भारतीय अपने प्राचीन ग्रन्थों के प्रति असीम आस्था रखते हैं। विष्णु, शिव और ब्रह्मा आदि के मन्दिर एक साथ बने हुए हैं। अनेक स्थानों पर तो मुसलमान भी दुर्गा की उपासना करते हैं। सभी धर्मों के अनुयायी एक दूसरे के धार्मिक कृत्यों में मिल-जुल कर भाग लेते हैं और इस प्रकार यहाँ धार्मिक एकता विद्यमान है। सभी सम्प्रदाय आत्मा, मोक्ष कर्म आदि पर आस्था रखते हैं। गङ्गा का महत्व सभी के लिए है। बद्री नारायण, जगन्नाथ पुरी, और सेतुबन्धु रामेश्वरम् आदि बहुलांश भारतीयों के लिए पूज्य स्थान हैं।

(4) भाषा-सम्बन्धी एकता—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि भारत में अनेक भाषायें बोली जाती हैं। परन्तु इन सभी भाषाओं में भी एकता के दर्शन होते हैं। सभी भाषाएं संस्कृत से निकली हैं और इस कारण इनमें एकता का होना स्वाभाविक ही है।

(5) सामाजिक एकता—भारत की जनसंख्या 56 करोड़ के लगभग है परन्तु यहाँ सामाजिक एकता की अनुपम छटा दिखलाई पड़ती है। समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग के उत्सवों में खुलकर भाग लेता है। होली, दीवाली, दशहरा, ईद, आदि के धार्मिक उत्सवों में सभी भारतीय भाग लेते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) जाति-सम्बन्धी एकता--हमने पहले इस बात का उल्लेख किया है कि यहाँ अनेक जातियों का जमघट रहा है और विदेशों से भी अनेक जातियाँ आती रही हैं, परन्तु ये विदेशी जातियाँ यहाँ की जातियों में घुल-मिल गई और जातिगत एकता की अनुपम छटा दिखलाई पड़ी। यहाँ के ग्रामों में हिन्दू मुसलमान और ईसाइयों के जीवन में कोई विशेष अन्तर देखने को नहीं मिलता। सभी एक प्रकार से रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत में सर्वत्र सांस्कृति एकता दिखलाई पड़ती है। अनेक विभिन्नताओं के बावजूद यहाँ मौलिक एकता के दर्शन होते हैं। हरवर्ट रिजले अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखता है, "भाषा, व्यवहार और धर्म तथा इन सभी प्राकृतिक और सामाजिक बहुविधि पृथकताओं के बावजूद, जो चीज भारत में आने वाले प्रेक्षक को प्रभावित करती है वह भारत में जीवन की आधारभूत एकता है।" पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है, "सभ्यता के सूर्योदय काल से ही एकता की भावना ने भारत के मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया है।"

———

अध्याय 2

भारत भूमि एवं उसके निवासी

(LAND AND PEOPLE OF INDIA)

प्रश्न 5—भारत की भौगोलिक स्थिति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(2) भारत को कितने प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है ? इन प्राकृतिक भागों का भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा।

देश की विशालता--भारत एक विशाल देश है। महाभारत में लिखा है :—

"यथा समुद्रो भगवान यथा हि हिमवान गिरि :
उभौ ख्यातौ रत्ननिधि तथा भारतं उच्चते।"

अर्थात् जो भू-खण्ड हिमालय पर्वत एवं रत्न-निधि हिन्द महासागर के मध्य स्थित है, वह भारत है। विष्णु पुराण में भी भारत के क्षेत्र के सम्बन्ध में लिखा है कि भारत पूरब से पश्चिम की ओर 2500 मील, उत्तर से दक्षिण की ओर 2000 मील की सीमा में विस्तृत है। इस देश का क्षेत्रफल 122, 100 वर्गमील है और उसकी जलीय सीमा भी लगभग 5000 मील है। यह ग्रेट-ब्रिटेन से 15 गुना बड़ा है और यदि पश्चिमी रूस को यूरोप महाद्वीप से निकाल दिया जाय तो सम्पूर्ण यूरोप महाद्वीप के बराबर होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति एवं सीमायें—भारत भूमध्य रेखा के 8° उत्तरी अक्षांश से लेकर 37° उत्तरी अक्षांश तक और 66° पूर्वी देशान्तर से लेकर 97° पूर्वी देशान्तर तक स्थित है। इसके उत्तर में शीतोष्ण कटिबन्ध और दक्षिणी भाग में उष्ण कटिबन्ध है। कर्क-रेखा इसके मध्य से होकर गुजरती है।

भारत के उत्तर में अराकान पर्वत श्रेणी, हिन्दूकुश पर्वत और दक्षिण-पूर्व एवं अरब सागर हैं।

भारत की प्राकृतिक रचना एवं संस्कृति पर प्रभाव—

भारत को मुख्य रूप से चार प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है :—

(1) उत्तर का पर्वतीय भाग।

(2) मैदानी भाग।

(3) दक्षिणी पठार।

(4) पूर्वी एवं पश्चिमी घाट।

(1) उत्तर का पहाड़ी भाग—इसके उत्तर में हिमालय पर्वत की श्रेणियाँ हैं जिनकी लम्बाई 1500 मील और चौड़ाई 150 से 200 मील तक है। ये पर्वतीय भाग सदियों से भारत के सजग प्रहरी रहे हैं। यहाँ से निकली हुई असंख्य नदियाँ भारत-भूमि को शस्य-श्यामला बनाती हैं। सिन्धु, गङ्गा, जमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ यहीं से निकली हैं। इसके क्रोड़ में बद्रीनारायण जैसे तीर्थ-स्थल भी हैं। हिमालय की पर्वतीय श्रेणियों के मध्य 3 दर्रे हैं– (1) खैबर, (2) बोलन और (3) गोमल। इनसे हम उत्तर के देशों के साथ व्यापार एवं संस्कृति का समन्वय स्थापित करते हैं। उत्तर के देशों में भारतीय धर्मों का प्रचार इन्हीं दर्रों के जरिये हुआ है। इन्हीं दर्रों के माध्यम से हमारे ऊपर विदेशी आक्रमण भी हुये।

(2) गंगा सिन्धु का मैदान—यह प्रदेश बहुत उपजाऊ है और गङ्गा, यमुना, सिन्धु एवं ब्रह्मपुत्र तथा उसकी सहायक नदियों से सींचा जाता है। यह मैदान पूर्व से पश्चिम तक 150 मील से 200 मील तक चौड़ा है। यह भारत का सबसे समृद्धिशाली प्रदेश रहा है क्योंकि यहाँ की मिट्टी सोना उगलती है। इसी मैदान में अत्यन्त उच्च कोटि की सभ्यता का जन्म हुआ और इसी प्रदेश में भारत की आत्मा बसती है। चूंकि यह क्षेत्र बहुत उपजाऊ है इसीलिए इस क्षेत्र में सांस्कृतिक उन्नति का विशेष अवसर प्राप्त हुआ। अनेक दार्शनिकों एवं कलाकारों का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ। वेद, रामायण, महाभारत, उपनिषद् आदि उच्च कोटि के ग्रन्थों का रचना इसी क्षेत्र के विद्वानों ने की। हिन्दू धर्म का इसी क्षेत्र में अधिक विकास हुआ हुआ एवं जैन तथा बौद्ध धर्म का यही उद्गम स्थल है। यही क्षेत्र भारत का हृदय है और यही मनु का आर्यावर्त है।

(3) दक्षिण का पठार—यह पथरीला प्रदेश है और त्रिभुजाकार है। इसके पश्चिमी समुद्र तट पर पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ हैं जो 3 हजार से 9 हजार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिट तक ऊँची हैं। विन्ध्याचल, सतपुड़ा पर्वत उत्तरी और दक्षिणी भारत के मध्य अवरोधक का कार्य करता है। इस क्षेत्र में भारत को अक्षय सांस्कृतिक निधियों के रूप में अजन्ता, एलोरा, कार्ली की गुफायें एवं चित्रकला के नमूने हैं। मुगल एवं मराठा युग में यह क्षेत्र भारतीय संस्कृति का एक आकर्षक क्षेत्र था। पूर्वी तट पर अनेक प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। पूर्वी एवं पश्चिमी तट पर बन्दरगाहों के माध्यम से विदेशों से व्यापार होता है और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पश्चिमी एवं पूर्वी समुद्र तटीय मैदान अपनी उपज और सम्पदा के लिये विख्यात हैं। इस देश में भक्ति की धारा भी अविरल रूप से बही है। भक्ति-परम्परा का विकास भी यहीं हुआ है।

(4) पश्चिमी एवं पूर्वी घाट—दक्षिण के पठार के एक ओर पूर्वी घाट और दूसरी ओर पश्चिमी घाट स्थित है। पश्चिमी घाट समुद्र तट से 3000 फिट से लेकर 9000 फिट तक ऊँचा है और इस कारण यह अत्यन्त दुर्गम है। मराठों ने यहाँ अनेक महत्वपूर्ण दुर्गों का निर्माण किया है। यहाँ कुछ क्षेत्रों की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और चावल एवं नारियल काफी मात्रा में यहाँ पैदा होता है। इस क्षेत्र के निवासियों में अनेक प्रकार के रीति-रिवाज पाये जाते हैं। भड़ोंच इस क्षेत्र का प्रसिद्ध बन्दरगाह रहा है। पूर्वी घाट में छोटी पहाड़ियाँ हैं और पड़ोस से इसका संबध बराबर बना रहा है। यहाँ अनेक बड़े नगरों और विशाल साम्राज्यों की स्थापना हुई है। इस प्रदेश के बन्दरगाहों द्वारा पूर्वी एशिया में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार हुआ।

ऊपर हमने भारत के 4 भौगोलिक क्षेत्रों एवं संस्कृति पर उनके प्रभाव की चर्चा संक्षेप में की है। यहाँ हम सम्यक रूप से भारत की प्राकृतिक रचना तथा भारतीय संस्कृति पर जो प्रभाव पड़ा है उसकी चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं:—

(1) भारत की विशालता और प्राकृतिक विभागों ने भारत को अनेक क्षेत्रों में विभाजित किया है जिससे यहाँ सांस्कृतिक भिन्नता के दर्शन होते हैं। (2) भौगोलिक सीमाओं की सुनिश्चितता ने समस्त भारत देश को एक इकाई के रूप में बना दिया है, (3) अपनी विशालता के कारण यह देश मातृ-भूमि के रूप में माना जाता है (4) उत्तरी भारत, दक्षिण के पठार और दक्षिण के मैदानों की अपनी विशेषताओं ने अलग-अलग संस्कृतियों का निर्माण किया है। (5) विन्ध्य के उत्तर में आर्य-संस्कृति और दक्षिण में आर्येतर संस्कृतियों का प्रभाव रहा है।

भौगोलिक स्थिति के कारण ही उत्तर और दक्षिण भारत में आचार-विचारों में अन्तर दिखाई पड़ता है। हिमालय पर्वत अत्यन्त ऊँचा है और इससे अनेक नदियाँ निकलती हैं जिन्होंने उत्तर के मैदान को उपजाऊ बनाया है। इससे आकर्षित होकर बहुत से विदेशी यहाँ आये और उन्होंने अपनी संस्कृति का प्रभाव हमारी संस्कृति पर डाला। परिणाम यह हुआ कि हमारी संस्कृति में लचीलापन आया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की उत्तरी सीमा सुरक्षित रही परन्तु बोलन और हिन्दूकुश पर्वतों के दर्रों से विदेशियों को आने का अवसर प्राप्त हुआ और इन्हीं रास्तों से शक, हूण, मंगोल आदि जातियाँ यहाँ आईं और भारतीय समाज में घुल-मिल गईं इससे यहाँ की संस्कृति में समन्वयशीलता, प्रतिरोधशक्ति एवं लचीलापन है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत की प्राकृतिक स्थिति ने भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला है। भारतीय संस्कृति की समन्वयशीलता, लचीलापन आदि गुण उसकी प्राकृतिक स्थिति के फलस्वरूप ही हैं।

प्रश्न 6—भारत की मुख्य जातियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

भारत की जनसंख्या 56 करोड़ से अधिक है। चीन को छोड़कर वह विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। इस विशाल देश में कम या अधिक रूप में सभी जातियों का मिलना स्वाभाविक है। यहाँ सम्मिश्रित जातियाँ पाई जाती हैं। नृतत्व के विचार से भारत की जनता में कई मूल जातियों का मिश्रण है। अधिकतर विद्वानों का यह मत था कि द्रविड यहाँ के मूल निवासी हैं और आर्य भारत में बाहर से आये हैं। प्रारम्भ में यहाँ 2 वर्ग थे-आर्य और दास। आर्य और दास का भेद वर्ण के आधार पर किया गया। आर्य गोरे और दास काले थे। नृतत्व वेत्ताओं ने भारत की जातियों को 6 भागों में बांटा है :—(1) हब्शी, (2) आग्नेय या निषाद, (3) किरात या मंगोल, (4) भूमध्य सागरीय (5) पश्चिमी वृत्तकपाल जाति, (6) आर्य। भारतीय वंशशास्त्र सर्वेक्षण के सचालक बी० एस० गुहा का कथन है कि, जातियों में इतना अधिक मिश्रण हुआ कि यह स्पष्ट रूप से समझा जाता है कि उनमें कठोर विलगाव सम्भव नहीं है। वह भारतीय निवासियों को 6 जातियों में बांटते हैं :—(1 नीग्रिटो (2) मंगोलाइट (3) भूमध्यसागरीय (4) प्रोटो आस्ट्रलाइड (5) छोटे सिर वाली पश्चिमी जाति (6) नार्डिक।

हरबर्ट रिजले काफी खोज के बाद भारतीय निवासियों को 7 प्रमुख जातियों में बांटता है :—(1) मंगोल, (2) द्रविड़, (3) आर्य, (4) मंगोल-द्रविड़, (5) आर्य द्रविड़, (6) द्रविड़, (7) तुर्क-ईरानी

हर्टन भारतीय निवासियों को 8 जातियों में बांटता है :—(1) अंडमान, आसाम के नागा प्रदेश तथा दक्षिण भारत के नीग्रो, (2) भूमध्य सागरीय जाति के लोग जो पैलस्टाइन से आकर भारत में बसे (3) आग्नेय भाषा बोलने वाली जाति, (4) द्रविड़, (5) आल्पस प्रदेशीय जाति (6) प्राचीन गुजरात तथा बंगाल के निवासी (7) वैदिक आर्य, जो संस्कृत बोलते थे, (8) उत्तरी तथा पूर्वी छोर पर मंगोल इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में जातियों का ऐसा भण्डार देखने को मिलता है कि उनका विभाजन करना ही मुश्किल हो गया है। मुख्य रूप से यहाँ 4 जातियाँ हैं :—(1) आग्नेय जाति जिसमें कोल, मुण्डा आते हैं, (2) लद्दाख से आसाम की चीना तिब्बती जाति, (3) दक्षिण भारत की द्रविड़ जाति, (4) उत्तर भा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आर्य जाति । ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ सबसे पहले नीग्रो आये जो असभ्य थे । उसके बाद आग्नेय (आष्ट्रिक) जाति के लोग अपनी कृषि सभ्यता लाये । तत्पश्चात् द्रविड़ों ने नगर सभ्यता की नींव डाली और इसके बाद आर्यों ने हिन्दू संस्कृति का प्रसार किया । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जो भी वर्णन किया जा रहा है वह अनुमान के आधार पर ही है । इसके हेतु कोई अकाट्य प्रमाण नहीं मिलते ! हाँ आर्यों के बाद एतिहासिक काल में यहाँ जो जातियाँ आईं उनके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं । यहाँ शक, हूण, पार्थिक, मंगोल यूनानी आदि जातियों के दस्ते आक्रमणकारियों के रूप में आये और भारतीय जनता में घुलमिल गये । संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति एक महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती हैं ।,

प्रश्न (3) वर्ण व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ? इसके गुण दोष क्या हैं ? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

वर्ण की उत्पत्ति की विवेचना कीजिये और विभिन्न वर्णों के कर्तव्यों का उल्लेख कीजिये ।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति कैसे हुई ? उसके गुण-दोषों पर विचार प्रकट कीजिये ।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

आर्यों की एक बहुत बड़ी देन वर्ण-व्यवस्था है । जन्म से मरण तक प्रत्येक आर्य विभिन्न सस्कार वर्ण भेद के अनुसार ही करता था । आर्यों के राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संगठन की रूप रेखा इसी वर्ण-व्यवस्था के आधार पर बनी हुई थी । समस्त समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था :—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।

यह विभाजन कर्म के अनुसार था अथवा जन्म के अनुसार, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि आरम्भ में यह विभाजन कर्मानुसार था परन्तु कालान्तर में जन्म के अनुसार हो गया ।

(1) कर्म के अनुसार विभाजन—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, आरम्भ में वर्ण व्यवस्था में जन्म के स्थान पर गुण और कर्म को ही महत्व दिया गया था । ऋग्वेद में लिखा है :—

"न दासो, नार्यो महित्वां व्रतं मिमाय"

अर्थात् मैं किसी को जन्म से दास या आर्य नहीं समझता । बल्कि मैं उसका महत्व उसके गुणों के अनुसार निर्धारित करता हूँ । हिन्दू धर्म-शास्त्र में यह स्पष्ट किया गया है :—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जन्मना जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्यते"

गीता में तो महापुरुष श्री कृष्ण ने बिल्कुल स्पष्ट कहा है :—

'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम् गुणकर्म विभागशः'

अर्थात् गुण कर्म के विभाग से मैंने उसको चार वर्णों में सृष्टि की है।

मानव में चार प्रकार की वृत्तियां मानी गई हैं—सात्विक, सात्विक-राजसिक, राजसिक-तामसिक, तामसिक। इन्हीं वृत्तियों के अनुसार ही वर्णों का विभाजन हुआ है। सात्विक प्रवृत्ति के पोषक ब्राह्मण कहलाये और सात्विक-राजसिक वृत्ति के पोषक क्षत्रिय। वैश्यों में राजसिक-तामसिक वृत्ति पाई गई और शूद्रों में तामसिक।

(2) जन्म के अनुसार—कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म न रह कर जन्म हो गया परन्तु फिर भी कर्म सिद्धान्त लुप्तप्राय नहीं हुआ। वाल्मीकि क्षत्रिय थे परन्तु वह ऋषि कहलाये। किन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि समाज के रूढ़िवादिओं ने कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था को झकझोर दिया और ब्राह्मण और शूद्र के पुत्र शूद्र ही कहलाये।

विभिन्न ग्रन्थों एवं विद्वानों ने भारतीय वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति की कहानी को विभिन्न प्रकार से बतलाया है। ऋग्वेद के अनुसार विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्री, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र पैदा हुये। मनु के अनुसार प्रजापति के उक्त अंगों से ही 4 वर्णों की उत्पत्ति हुई है। तैत्तरीय उपनिषद के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से उत्पन्न हुये। भृगु के अनुसार आरम्भ में केवल द्विज वर्ण था जो आगे चल कर अलग-अलग वर्णों में विभाजित हो गया। महाभारत में भी लिखा है कि आरम्भ में केवल ब्राह्मण वर्ण ही था परन्तु कालान्तर में 3 और वर्ण हो गये। इनके विभाजन का आधार श्वेत, लाल, पीला और कृष्ण वर्ण था। जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि गीता में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि ईश्वर ने 4 वर्णों की रचना उनके कर्मों के अनुसार की।

वर्ण व्यवस्था चाहे जैसे प्रकाश में आई हो, परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि इस व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य—वर्ण व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य समाज के संगठन को सुसंगठित रूप से चलाना था। सामाजिक वर्गीकरण संसार के सभी समाजों में मिलता है परन्तु इतना व्यवस्थित रूप कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इस व्यवस्था का लक्ष्य विभिन्न प्रकार की मानवीय शक्तियों को उनके अनुकूल और उपयोगी कार्यों में संलग्न रखना था जिससे समाज की स्थिरता और सुदृढ़ता बनी रहे। इस व्यवस्था के अनुसार समाज के कार्य शान्तिपूर्वक चलते रहे। प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण के कार्य को अपनी पूर्ण शक्ति से सम्पन्न करता था। उसके कार्य में दूसरे वर्ण के व्यक्ति बाधा नहीं डालते थे। इसी कारण समाज में कटुता नहीं व्याप्त हुई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न वर्ण एवं उनके कार्य—यहाँ चारों वर्णों के कार्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है :—

(1) ब्राह्मण—ब्राह्मण प्रथम वर्ण के अन्तर्गत आते थे जिनका मुख्य कार्य बौद्धिक अर्थात् अध्ययन-अध्यापन और धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करना था। यह वर्ग अत्यन्त सादगी से जीवन व्यतीत करता था। ब्राह्मण देश को आध्यात्मिक और साहित्यिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते थे। उन्हें अपनी जीविका की रक्षा की चिन्ता नहीं थी। यह कार्य समाज के अन्य वर्णों का दायित्व था। वे एकाग्र होकर अपने सतत् चिंतन के द्वारा समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करते थे। समाज के अन्य वर्ण ब्राह्मणों को श्रद्धा का पात्र समझते थे। यही कारण था कि ब्राह्मण अपनी पूरी लगन से अपने कार्य को सम्पन्न करते थे। आर्य ब्राह्मणों ने अपने तर्कों द्वारा ब्रह्माण्ड को चीरकर अनन्त और असीम का साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया। साहित्यिक क्षेत्र में कल्पना के रंगीन पंखों पर उड़ कर उन्होंने उस साहित्य का सृजन किया जो भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है।

क्षत्रिय—क्षत्रियों का कार्य रक्षा करना था। देश के शासन का भार उनके ही हाथों में था। वह ब्राह्मणों की मन्त्रणा से देश के शासन को चलाने का उत्तरदायित्व लिये रहते थे। शौर्य, साहस और वीरता के वह सजीव रूप थे।

वैश्य—वैश्य देश की आर्थिक उन्नति में सहायक होते थे। व्यापार और उद्योग के द्वारा देश को सम्पन्न बनाना ही उनका प्रमुख कार्य था। देश को धनधान्य से पूर्ण करने में वैश्यों का बहुत बड़ा हाथ होता था।

शूद्र—चौथा वर्ण शूद्रों का था। इनका मुख्य कार्य अन्य वर्गों के लोगों की सेवा करना था जिससे कि वह समाज के कार्य को शान्तिपूर्वक चलाते रहें।

वर्ण-व्यवस्था की विकृतियाँ—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत जटिलता आ गई। इस जटिलता के फलस्वरूप जातियों और उप जातियों का आरम्भ हुआ। इस आरम्भ का मुख्य कारण अनार्यों का आर्यीकरण और मनुष्य की व्यावसायिक विभिन्नता और धर्म से विरक्ति था। फलतः चारों वर्णों में संघर्ष आरम्भ हुआ।

आरम्भ में वर्णों में कार्य-विभेद के अतिरिक्त कोई दूसरा विभेद नहीं था। प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के व्यक्ति के साथ खाता-पीता और विवाह सम्बन्ध स्थापित करता था। कार्य परिवर्तन से वर्ण परिवर्तन भी हो जाता था परन्तु जब इस व्यवस्था में जटिलता आ गई और अनेक जातियाँ उप-जातियाँ बनने लगीं तो अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध समाप्त हो गये। एक वर्ण के व्यक्ति दूसरे वर्ण के व्यक्ति को नीची निगाह से देखने लगे। फलतः समाज जर्जरित होने लगा और सङ्गठन की इकाई समाप्त हो गई। समाज में एकता, सबलता, सहयोगिता और लोक-संग्रह की भावना को बड़ा धक्का लगा। फलस्वरूप, वर्ण-व्यवस्था को निन्दनीय समझा जाने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा और आधुनिक युग के विचारशील व्यक्ति इस व्यवस्था को समाप्त कर देना ही अधिक उचित समझते हैं ।

वर्ण-व्यवस्था का दूसरा दोष यह था कि प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को अपना समुचित विकास करने का अवसर नहीं मिला । शासन करना एक वर्ण के व्यक्ति का काम हुआ और सेवा करना दूसरे वर्ण के व्यक्ति का । फलतः चारों वर्णों का विकास उनकी सीमा के अन्तर्गत ही हुआ । उनके पृथक-पृथक विधि निषेधों ने उनकी सीमा को नष्ट नहीं होने दिया । अतः सम्पन्न समाज के विकास में बाधा विकसित हुई ।

इस वर्ण-व्यवस्था का आधार धर्म था । जब समाज में संकीर्ण प्रवृत्ति का जन्म हुआ तो विभिन्न वर्ण के लोगों ने अन्तर्जातीय विवाह और खान-पान के निषेध और रक्त-शुद्धता आदि का पालन करना और कराना ही अपना धर्म समझ लिया । फलतः समाज के वर्णों के बीच की खाईं गहरी होती चली गई, विकास को लोक-मान्यता का बल नहीं मिला और वर्ण व्यवस्था दूषित होती चली गई ।

वर्ण-व्यवस्था के लाभ एवं उपयोगिता—यद्यपि यह कहना ठीक है कि परिस्थितियों के परिवर्तन के फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था में अनेक दोष आ गये और उसकी उपयोगिता कम हो गई परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि शताब्दियों तक इस व्यवस्था को अपनाकर भारतीय उन्नति करते रहे । यह व्यवस्था भारतीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हुई और भारतीय समाज की सुदृढ़ इकाई बन गई ।

इस व्यवस्था के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करता था । ब्राह्मणों का कार्य यदि पठन-पाठन था तो वह अपनी पूर्ण शक्ति से उस कार्य को सम्पन्न करते थे । क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा के सजग प्रहरी थे । वैश्य राष्ट्र के आर्थिक ढांचे की नींव थे और शूद्र समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सेवा व्रत को अपनाये हुये थे । ब्राह्मणों को रोटी और रोजी की चिन्ता नहीं । यह कार्य अन्य वर्ण के लोग सम्पन्न करते थे । यही दशा अन्य वर्णों की भी थी । वर्ण विभाजन द्वारा अच्छा समन्वय किया गया था ।

समाज में बात दृढ़ हो चुकी थी कि व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार ही जन्म पाता है और विभिन्न वर्णों में उत्पत्ति उसके कर्म कर्म का ही फल है । अतः अच्छे वर्ण में जन्म लेने के लिए लोग सुकर्म करने के लिए प्रेरित होते थे । प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता था और अपना कार्य सम्पादन करता था जिसके फलस्वरूप बहुत समय तक भारतीय उन्नति के शिखर पर विद्यमान रहे । लोक-कल्याण की भावना ने भारतीयों को सदैव ही प्रेरित किया ।

इस उपयोगिता के फलस्वरूप ही यह वर्ण-व्यवस्था भारत की स्थायी निधि बन गई । सत्य तो यह है कि प्राचीन काल में यह वर्ण-व्यवस्था धार्मिक व्यवस्था न होकर केवल सामाजिक व्यवस्था थी । धर्म का पाठ तो कालान्तर मे ही उसमें आया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबकि कुछ मनीषियों ने यह समझा कि यदि इसे धर्म के बाने से उढ़ा दिया जाय तो यह समाजोपयोगी व्यवस्था भारत में सदैव पनपती रहेगी।

प्रश्न 8—हिन्दू समाज में कौन-कौन से आश्रम हैं और उनका क्या महत्व है ?

आश्रम व्यवस्था भी भारतीय समाज की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यवस्था रही है। प्राचीन भारत में मनुष्य की औसत आयु 100 वर्ष मानी जाती थी और इस 100 वर्ष की अवस्था के लिए 4 आश्रमों की व्यस्था की गई थी जिनका उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है :—

(1) ब्रह्मचर्य आश्रम,
(2) गृहस्थ आश्रम,
(3) वानप्रस्थ आश्रम,
(4) सन्यास आश्रम,

(1) ब्रह्मचर्य आश्रम—ब्रह्मचर्य आश्रम, जीवन-संघर्ष में पदार्पण करने के पूर्व तैयारी का काल था। उपनयन संस्कार के उपरान्त पुरुष ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता था और 25 वर्ष की अवस्था तक गुरू के पास रह कर कठोर संयम और नियम से रहकर वेदाध्ययन करता था। वह आमोद-प्रमोद से दूर रह कर आश्रम और साधना का जीवन व्यतीत करता था। शय्या-शयन, संगीत-नृत्य आदि का ब्रह्मचारी के जीवन में कोई भी स्थान नहीं था। वह समिधा दान करता था, गुरू की सेवा करता था, देवताओं और पितरों को तर्पण देता था और भिक्षावृत्ति को अपनाता था। भिक्षावृत्ति एक बहुत विचित्र कार्य था परन्तु इसका विशेष महत्व था।

(2) गृहस्थ आश्रम—ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् लगभग 25 वर्ष की अवस्था में 'समावर्तन' संस्कार के सम्पन्न होने के पश्चात् मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर उसको तीन प्रकार के ऋणों (पितृऋण, अतिथि ऋण, और देवऋण) को चुकाना पड़ता था। गृहस्थ आश्रम में ही धर्म, अर्थ और काम का समन्वय होता है जिनके सम सेवन के द्वारा आगे चल कर मनुष्य मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है 25 वर्ष की अवस्था में व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम में वह शारीरिक और मानसिक दोनों ही शक्तियों द्वारा संसार में संघर्ष करता है। इस आश्रम में उसके मुख्य कर्तव्य थे—सन्तानोत्पत्ति, धनोपार्जन, दान, स्त्री-पुत्रादि का पालन-पोषण और समाज के अन्य लोगों की सहायता एवं सेवा। इसी आश्रम में व्यक्ति स्वार्थ-त्याग प्रेम, दया और सहानुभूति का पाठ पढ़ता है। और अपनी समस्त अभिलाषाओं की पुष्टि करता है।

(3) वानप्रस्थ आश्रम—गृहस्थ आश्रम के पश्चात् 50 वर्ष की अवस्था में व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। वानप्रस्थ शब्द वन प्रस्थान का योग है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् वन को प्रस्थान करना ही वानप्रस्थ है। इस आश्रम में व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में करता था। वह कंदमूल फल आदि पर जीवन व्यतीत करता था और मिष्ठान्न, मांस आदि से दूर रहता था। ग्राम में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। वह स्त्री संभोग से कोसों दूर रहता था। उसको भूमि पर शयन करना होता था और पाँच महान् त्यागों की साधना करनी होती थी। वह मृगचर्म, वृक्ष-त्वचा और अन्य जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को धारण करता था। दिन भर, उसको बैठे रहने, घूमते रहने और योगाभ्यास करने के आदेश थे। तप द्वारा वह अपने शरीर को स्वच्छ करता था।

(4) संन्यास आश्रम 50-75 वर्ष की अवस्था वानप्रस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करने के पश्चात् व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। यदि वानप्रस्थ आश्रम में ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी जो उसको मोक्ष की प्राप्ति होती थी। सन्यास के लिए नग्न रहना, जीर्ण-शीर्ण, काषाय वस्त्र धारण करने की व्यवस्था थी। वह इसी कामना से अपना जीवन बिताता था। वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था और अपने लिये लोक की चिन्ता को छोड़कर परलोक के विषय में सोचता था।

आश्रम व्यवस्था का महत्व—आश्रम व्यवस्था व्यष्टि और समष्टि दोनों के लिये ही कल्याणकारी थी।

(1) व्यष्टि के लिये महत्व—आश्रम व्यवस्था के द्वारा मनुष्य को आत्म-संयम, शिक्षा, दीक्षा और आज्ञायें प्राप्त होती थीं। वह धर्म पूर्वक सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त होता था। वेदव्यास ने आश्रम व्यवस्था को चार दण्डों वाली एक ऐसी सिद्धि बताया है जो ब्रह्म की ओर ले जाने वाली है।

चतुष्पदी हि निः श्रेणी ब्रह्मण्येदा प्रतिष्ठिता,
एतामारुह्यनिःश्रेणी ब्रह्म लोक महीयते।

(2) सामाजिक महत्व—यद्यपि यह ठीक है कि आश्रम व्यवस्था का मूल्य उद्देश्य वैयक्तिक उन्नति था परंतु आर्यों ने व्यष्टि में समष्टि का कल्याण देखा था। गृहस्थ का यह धर्म था कि वह अन्य आश्रमों में रहने वाले व्यक्तियों का भरण-पोषण करे। आश्रम व्यवस्था के फलस्वरूप समाज में संघर्ष कम था। स्वार्थ की दौड़ में मनुष्य अंधा होकर नहीं दौड़ रहा था और यही कारण था कि समाज में चारों ओर शांति स्थापित हो गई थी।

प्रश्न 9—भारत में जाति प्रथा की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

जाति प्रथा की उत्पत्ति और विशेषतया वर्तमान युग के सन्दर्भ में इसके गुण दोषों पर विचार कीजिये ? जाति और वर्ण से आप क्या समझते हैं ? दोनों में अन्तर बताइये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय जाति प्रथा की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

जाति का अर्थ—हरबर्ट रिजले का मत है कि परिवारों के संगठित समूह को जाति कहा जाता है। इस संगठन या समूह का एक हीं नाम होता है जो किसी ईश्वरीय अथवा महान व्यक्ति से सम्बन्धित होता है और उनका व्यवसाय भी एक ही होता है। कूले के शब्दों में जब एक वर्ग पूर्णतया आनुवंशिकता पर आधारित होता है तो हम उसी को जाति कहते हैं। विन्सेन्ट स्मिथ का विचार है कि जाति परिवारों का एक समूह है जो धार्मिक संस्कारों, भोजन और विवाह-सम्बन्धी पवित्रता बनाये रखने के लिये एकत्रित होते हैं।

जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति—जाति-प्रथा की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं परन्तु यह अवश्य है कि यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। रैकसन का विचार है कि सबसे पहले आर्यों एवं अनार्यों के गोरे एवं काले रंग के आधार पर जाति-प्रथा का प्रारम्भ हुआ। जाति का मूलाधार जन्म है। रक्त और रंग की शुद्धता एवं धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों की एकता की भावना ने जाति-प्रथा को जन्म दिया। समान धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों एवं विचार वाले लोगों की एक जाति बन गई। कालान्तर में आवश्यकतानुसार यह लोग एक ही व्यवसाय करने लगे और यह व्यवसाय उनका परम्परागत व्यवसाय बन गया। जब व्यवसाय उच्च और निम्न कोटि के होने लगे तो जातियों की उप-जातियाँ बनीं। रक्त एवं रंग को शुद्ध रखने की भावना ने भी जाति-व्यवस्था को दृढ़ किया। लोगों ने अपने-अपने रक्त और रंग वालों से विवाह-सम्बंध स्थापित किये। इस प्रकार प्रत्येक जाति ने अपने अलग आचरण, आदर्श एवं नियम बनाये जिनका प्रत्येक सदस्य के हेतु पालन करना आवश्यक होता था। विदेशियों के आगमन के फलस्वरूप भारत में अनेक जातियाँ अस्तित्व में आईं। रीति-रिवाजों का उल्लंघन करने के फलस्वरूप बहुत से व्यक्ति जाति से निकाल दिये गये और उनकी अलग जाति बनी। नवीन धार्मिक सम्प्रदायों ने भी जातियों एवं उपजातियों की संख्या में बढ़ोत्तरी की एवं जाति-व्यवस्था बिल्कुल जटिल हो गई।

जाति एवं वर्ण में अन्तर—जाति और वर्ण व्यवस्था में अन्तर है। जाति का अर्थ जन्म देना है जब कि वर्ण का अर्थ वरण अर्थात चुनाव करना है। इस प्रकार दोनों के शाब्दिक अर्थों में पर्याप्त अन्तर है। जाति व्यवस्था जन्म-मूलक है एवं वर्ण व्यवस्था परिवर्तनशील एवं लचीली है जबकि जातिव्यवस्था कठोर है। वर्ण-व्यवस्था में केवल चार वर्ण थे परन्तु जातियों की संख्या असंख्य है।

जाति-व्यवस्था के गुण—जाति-व्यवस्था मूल रूप से स्वयमेव अवश्यकतानुसार प्रकाश में आयी। उसने आर्यों एवं द्रविड़ों इन दो जातियों एवं उनकी संस्कृ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तियों को सुरक्षित रखा। जाति-व्यवस्था के अनुसार विभिन्न वर्गों को अपना अस्तित्व बनाये रखने का अवसर प्राप्त हुआ। इस व्यवस्था ने समाज में अनेक सुसंगठित वर्ग बना दिये जिनका कार्य-विभाजन हो गया और इस विभाजन से अनेक लाभ हुये। इससे परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा एवं प्रतिस्पर्धा समाप्त हुई। एक जाति के लोग मिल-जुल कर रहने लगे। कार्य-विभाजन के फल स्वरूप कार्य-कुशलता में वृद्धि हुई। व्यवस्था ने परम्पराओं एवं रीतिरिवाजों को भी सुरक्षित रखा। रक्त को पवित्र रखने की प्रथा भी लाभदायक सिद्ध हुई। जाति-व्यवस्था के कठोर प्रतिबन्धों ने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को सुरक्षा प्रदान की। मुसलमानों एवं ईसाइयों ने हिन्दू धर्म पर आक्रमण किये परन्तु वे हिन्दू समाज को समाप्त न कर सके। गिल्बर्ट जाति प्रथा की तुलना यूरोपीय राष्ट्रीयताओं से करता है।

जाति-व्यवस्था के दोष—जाति-व्यवस्था के अपने दोष भी हैं। हिन्दू समाज के अनेक जातियों एवं उपजातियों में बँट जाने के फलस्वरूप उनमें वर्ग, अभिमान एवं पार्थक्य की भावना का जन्म हुआ। समाज का दृष्टिकोण संकुचित होता गया। जाति, ईर्ष्या, द्वेष एवं संस्कार ने समाज को इतने अधिक प्रतिद्वंन्दी सम्प्रदायों में बाँट दिया कि राष्ट्रीय संकट और विदेशी आक्रमण के समय भी वे संगठित न हो सके। जाति-व्यवस्था सामाजिक विकास में भी बाधक सिद्ध हुई है और जिन लोगों ने जातिगत रुचियों को तोड़ा उनके लिए दण्ड का प्राविधान किया गया। परिणाम यह हुआ कि जाति-व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय समाज में प्रगतिशीलता के मार्ग में रोड़ा अटका। विन्सेन्ट स्मिथ का विचार है कि जाति-व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसने भारतीयों से उन्मुक्त रूप से घुलने-मिलने नहीं दिया। छुआ-छूत की भावना जो भारतीय समाज का सबसे भयंकर शत्रु है, इसी जाति-प्रथा का परिणाम है।

जाति-व्यवस्था का भविष्य—जाति-व्यवस्था अत्यन्त प्रचीन काल से हिन्दू समाज का स्तम्भ रही है परन्तु आज उसके बन्धन ढीले होने लगे हैं। लोग अपने परम्परागत व्यवसाय को न अपना कर उन विषयों को अपनाते हैं जिनमें वे अपनी प्रतिभा दिखा सकें। आज विभिन्न जातियों में परस्पर खान-पान होने लगा है। भारतीय समाज में यत्र-तत्र अन्तर्जातीय विवाह भी दिखलायी पड़ते हैं। परन्तु राजनीतिक प्रतिद्वन्दिता और स्वार्थपरता आदि बातें ऐसी हैं जिनके फलस्वरूप जाति-व्यवस्था भारतीय समाज से समाप्त नहीं होने पा रही है। आशा है कि शिक्षा के प्रसार के स्व-फिल रूप इस देश से जाति-व्यवस्था की कुरीतियाँ सदैव के लिए समाप्त हो जायँगी।

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ३

भारत के धर्म

RELIGIONS OF INDIA

प्रश्न 10—वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म की प्रमुख विशेषताओं को बतलाइए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

11—हिन्दू धर्म के उद्‌भव एवं विकास की विवेचना कीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारत एक धर्मपरायण देश है और भारतीय संस्कृति धर्म से अनुप्रमाणित रही है। धर्म के विषय में कहा गया है कि जिससे लोक कल्याण हो वही धर्म है। कर्ण पर्व में लिखा है, "जो धारण करे वह धर्म है, धर्म प्रजाओं को धारण करता है। जिससे लोक का धारण हो, लोक की स्थिति हो वही निश्चित रूप से धर्म है।" धर्म को भारतीय संस्कृति में अत्यन्त व्यापक रूप से ग्रहण किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के लक्षण बतलाये गये हैं—धैर्य रखना, क्षमा करना, इन्द्रिय निग्रह करना, चोरी न करना, पवित्रता, ब्रह्मचर्य का पालन, बुद्धि का प्रयोग, सत्य सम्भाषण और क्रोध न करना। हिन्दू धर्म इन्हीं सब बातों से अनुप्राणित है।

हिन्दू धर्म का उद्‌भव और विकास

हिन्दू धर्म का प्रारम्भ कब हुआ, और इसका प्रवर्तक कौन था, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वेद हिन्दू धर्म के आदि स्रोत हैं। उपनिषद, स्मृति, पुराण, भगवद्‌गीता, रामायण, महाभारत आदि इस धर्म के आधार ग्रन्थ हैं।

वैदिक धर्म—ऋग्वेद सबसे प्राचीन धार्मिक और संस्कृतिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें शिव, कृष्ण, राम, दुर्गा आदि अन्य देवी-देवताओं की उपासना का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु वह केवल प्रकृति उपासना, और मृतक पूजा तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसमें अन्य धार्मिक भावनाएँ भी हैं। वैदिक धर्म का जन्म प्राकृतिक तत्वों के मानवीयकरण द्वारा हुआ है। यह धर्म मूल रूप से बहुदेववादी है। इसमें जिस देवता की स्तुति की जा रही है उसे ही सर्वोपरि मान लिया गया है। यह धर्म ऋत और सत्य पर आधारित था। सत्य, श्रद्धा, कर्मवाद, पुनर्जन्म आदि में ऋग्वैदिक आर्यों का विश्वास था और ब्रह्मज्ञान को वे मोक्ष मानते थे। वैदिक युग में यज्ञों की प्रधानता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। आरम्भ में यज्ञ अत्यन्त सरल होते थे परन्तु उत्तर वैदिक काल में यह यज्ञ अत्यन्त जटिल और खर्चीले हो गये। उपनिषद काल में ब्रह्म आत्मा, मोक्ष, कर्मज्ञान, उपासना और संसार आदि के सिद्धान्त उठ खड़े हुए। अब यज्ञ का स्थान ज्ञान ने ले लिया। सूत्रकाल में कर्मकाण्ड को अधिक विकसित किया गया। यज्ञों के नाम अत्यन्त कठोर हो गये और उपनिषद कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था अत्यधिक शक्ति की जंजीरों में जकड़ दी गई। इसी समय कर्मकाण्ड के विरोध में अनेक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए जिनमें बौद्ध और जैन सम्प्रदाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दू धर्म ने इस समय नवीन रूप धारण किया।

हिन्दू धर्म का शुभारम्भ और नवीन रूप—रामायण और महाभारत का काल प्राचीन भारत के नवोत्थान का काल कहा जा सकता है। इस काल में सामान्य जनता में उपासना पद्धति को व्यापकता मिली और सामान्य जनता एवं आर्येतर जातियों के आराध्यों को भी धर्म में स्थान दिया गया। सूखे दार्शनिक विचारों से अलग हटकर उपनिषदों की श्रद्धा पर बल दिया गया और यही आगे चलकर भक्ति-वाद के जन्म का कारण बना। भगवान को निर्माता और विध्वंसक के साथ ही रक्षक के रूप में भी पहचाना गया। यहीं से ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की गई और यही त्रिवेदवाद अवतारवाद के रूप में विकसित हुआ। हर वस्तु में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया गया। अवतारवाद की कल्पना से हिन्दू धर्म में नवीन चेतना आई। उसने मूर्ति पूजा, मन्दिरों का निर्माण, तीर्थ यात्रा आदि के हेतु वातावरण तैयार किया। इस प्रकार धर्म लगभग उसी रूप में आ गया जिस रूप में उसे हम आज देखते हैं।

पौराणिक काल और हिन्दू धर्म का गौरव—पुराणों के काल (350 ई० से 650 ई०) में हिन्दू धर्म का अत्यधिक विकास हुआ। इस युग में अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ और सम्प्रदाय में आराध्य को सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्वीकार किया इन विकासमान सम्प्रदायों में तीन मुख्य हैं—(1) वैष्णव सम्प्रदाय, (2) शैव सम्प्रदाय, और (3) शक्ति सम्प्रदाय। तंत्रों और षड्दर्शनों का विकास भी इसी युग में हुआ। ये दर्शन हैं—मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त। कालान्तर में हिन्दू धर्म कभी भी उनके प्रभाव से मुक्त न हुआ।

पौराणिक युग में अवतार वाद का विकसित रूप देखने को मिला। इसके साथ ही मातृशक्ति की कल्पना इस काल की अपनी अलग विशेषता रही। शक्ति की कल्पना ने प्रत्येक देवता के साथ एक शक्ति को जन्म दिया जैसे इन्द्र की इन्द्राणी और ब्रह्मा की ब्रह्माणी आदि। पहले की तरह धर्म पर केवल ब्राह्मणों का आधिपत्य न रहा और साधारण जनता की अभिरुचि भी धर्म से बहुत अधिक हो गई। हिन्दू धर्म का वर्तमान रूप पौराणिक ही है केवल इसमें भक्ति नाम की नई चीज का समावेश हो गया है। यह भक्ति मध्य-काल के भक्ति आन्दोलन की देन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू धर्म की विशेषताएँ

हिन्दू धर्म अनेक विशेषताओं से युक्त है। यहाँ इन विशेषताओं की चर्चा संक्षेप में की जा रही है :—

(1) अवतारवाद में विश्वास—हिन्दू धर्म की सर्वप्रमुख विशेषता अवतार-वाद में विश्वास है। यह कहा जाता है कि ईश्वर के 24 अवतार हो चुके हैं और अभी 24 अवतार और होंगे।

(2) पुनर्जन्म में विश्वास—हिन्दू धर्म का पुनर्जन्म में विश्वास है और इस धर्म में यह मान्यता है कि जन्म और मृत्यु का चक्र अबाध गति से तब तक चला करता है जब तक कि मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती।

(3) आत्मा की अमरता—हिन्दू धर्म में यह मान्यता है कि आत्मा अमर है। वह कभी नष्ट नहीं होती। जब मानव शरीर शिथिल पड़ जाता है तो आत्मा इस शरीर का परित्याग करके दूसरे रूप में वैसे ही चली जाती है जैसे कि मनुष्य जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का परित्याग करके नवीन वस्त्रों को धारण कर लेता है।

(4) आस्तिकता—हिन्दू धर्म की एक मुख्य विशेषता उसकी आस्तिकता रही है और इसमें ईश्वर को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी माना गया है। उसे 'सत्, चित् और आनन्द' स्वरूप कहा गया है। ईश्वर को निर्गुण और निराकार भी माना गया है और सगुण साकार भी। वह सृष्टि का निर्माता, पालक और संहारक तीनों ही है।

यह ठीक है कि इस धर्म में आस्तिकता का प्राधान्य है परन्तु चार्वाक और सांख्य दर्शन के रूप में इसमें वास्तविक दर्शन भी दिखलाई पड़ता है।

(5) कर्म का प्राधान्य—इस धर्म में कर्म को विशेष महत्व दिया गया है। गीता में कृष्ण ने कहा है, "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" अर्थात् फल की चिन्ता न करके मनुष्य को कर्म में रत ही रहना चाहिए। यही जीवन का परम सत्य है।

(6) सर्व ग्राह्यता—हिन्दू धर्म अत्यन्त लचीला है। इसमें सर्वग्राह्यता का गुण है और यह सभी को अपने में ग्रहण कर लेने की क्षमता रखता है। सर मोनियर विलियम्स ने लिखा है, "इसकी वास्तविक शक्ति इसमें है कि मानव चरित्र और विचारों की विभिन्नता में यह असीम रूप से अपने को ढाल लेता है।

(7) उदारता—इस धर्म की एक अन्य विशेषता उदारता और सहिष्णुता रही है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदायों और अनेक विचारधाराओं के दर्शन होते हैं। अपनी इस उदारता के फलस्वरूप ही इस धर्म ने जैन और बौद्ध धर्म को भी अपने में आत्मसात् सा कर लिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(8) आशावादिता—यह धर्म आशावादी धर्म है और निराशावाद का इसमें कोई भी स्थान नहीं है।

(9) वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास—इस धर्म का वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास रहा है।

(10) इष्ट देवतावाद और अधिदेवतावाद पर बल—हिन्दू धर्म की एक अन्य विशेषता यह भी रही है कि इसमें इष्ट देवतावाद और अधिदेवतावाद पर विशेष बल दिया गया है।

(11) पुरुषार्थ चतुष्टय और वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास—हिन्दू धर्म का विश्वास पुरुषार्थ चतुष्टय में है। वह धर्म, अर्थ, काम के सम-सेवन में विश्वास करता है और मोक्ष की कल्पना करता है। प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था में भी इसकी आस्था रही है।

(12) समाजवाद में आस्था—हिन्दू धर्म की आस्था समाजवादी विचारधारा में रही है। समाजवाद का साधन है संयम। चार आश्रमों की व्यवस्था करके यहाँ समाजवादी व्यवस्था को बल प्रदान किया गया है।

(13) लोकतंत्रात्मक प्रवृत्ति—हिन्दू धर्म की एक अन्य विशेषता उसकी लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्ति रही है। इस्लाम में पैगम्बर के आधिपत्य को स्वीकार किया गया है। ईसाई धर्म में पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया है। हिन्दू वेदान्त के आदर्श को मानता है। लोकतंत्र के अस्तित्व को स्वीकार कर प्रत्येक को परमात्मा तक पहुँचने का अधिकार हिन्दू धर्म प्रदान करता है।

(14) त्याग की भावना—हिन्दू धर्म की एक अन्य विशेषता उसकी त्याग की भावना है। यहाँ त्याग को सदैव महत्व प्रदान किया गया है और भोग-विलास को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

प्रश्न 12—भारत में बौद्ध धर्म की संक्षिप्त रूप रेखा लिखिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की मुख्य देन का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

गौतम बुद्ध के धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों का विवरण दीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

बौद्ध धर्म के संस्थापक कौन थे और उनकी शिक्षाएँ क्या थीं ?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

गौतम बुद्ध के जीवन एवं उपदेशों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का परिचय दीजिए।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा बुद्ध का जीवनवृत्त

(1) प्रारम्भिक जीवन—महात्मा बुद्ध का जन्म 567 ई० पू० के लगभग लुम्बिनी वन में हुआ। उनके पिता शुद्धोदन थे जो शाक्य गणराज्य के प्रधान थे। उनकी माता का नाम माया देवी था। महात्मा बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था। बाल्यावस्था में सिद्धार्थ अत्यन्त विचारशील थे। वह घण्टों एकान्त में बैठकर चिन्तन किया करते थे। अपने पुत्र को सांसारिकता से उदासीन देखकर महाराज शुद्धोदन ने उनका विवाह यशोधरा नाम की एक सुन्दरी से कर दिया जिससे एक राहुल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

(2) महाभिनिष्क्रमण—पत्नी और पुत्र के बन्धन भी सिद्धार्थ को उनके मार्ग से विचलित नहीं कर सके और एक दिन रात्रि को वह अपने छन्दक नाम सारथी के साथ राज्य प्रसाद को छोड़कर वन को चल दिये। इस घटना को महाभिनिष्क्रमण के नाम से पुकारा जाता है। इस समय महात्मा बुद्ध की अवस्था 30 वर्ष की थी।

(3) सत्य की खोज में—वन में पहुंचने के पश्चात् महात्मा बुद्ध ने छन्दक को घर वापस कर दिया और अपने राजसी वस्त्रों को त्यागकर भिक्षु का वेश धारण कर लिया। वह सत्य की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। आरम्भ में उन्होंने ब्राह्मणों का शिष्यत्व किया और उनके शास्त्रों एवं दर्शनों का अध्ययन किया। इससे उन्हें शान्ति न मिली। राजगृह में उन्होंने अलर एवं उदक नामक विद्वानों से अपनी जिज्ञासा शान्त करनी चाही परन्तु इससे भी उन्हें शान्ति न हुई। तत्पश्चात् उन्होंने घोर तपस्या प्रारम्भ की। 6 वर्ष तक तपस्या करके उन्होंने अपने शरीर को जर्जरित कर दिया परन्तु इस तपस्या के द्वारा भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और उन्होंने सोचा कि मोक्ष की प्राप्ति तपस्या से नहीं वरन् बुरे विचारों के परित्याग से हो सकती है। यह सोचकर उन्होंने अपनी तपस्या भंग कर दी। फलस्वरूप उनके 5 शिष्यों ने जो उनके साथ तपस्या कर रहे थे यह कह कर उनका साथ छोड़ दिया कि वे पथ भ्रष्ट हो गये हैं।

(4) ज्ञान प्राप्ति—गौतम अपने साथियों के साथ छोड़ने पर भी किंचित विचलित नहीं हुए और अपने कार्य में वे रत रहे। वे एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे और सत्य के चिन्तन में रत रहने लगे। एक दिन निरंजना नदी के किनारे जब वह पीपल के पेड़ के नीचे ध्यान लगाये बैठे हुए थे तो उन्हें अचानक ज्ञान के प्रकाश की प्राप्ति हुई और तभी से वह 'बुद्ध' कहलाये और उनके अनुयायी 'बौद्ध'।

(5) उपदेश कार्य—ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध ने चारों ओर घूमकर संसार को ज्ञान का मार्ग दिखलाने का निश्चय किया। सबसे पहले वह सारनाथ आये और वहाँ उन्हें अपने बिछड़े हुए 5 साथी मिले। पाँच साथियों को उन्होंने सबसे पहले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश दिया और उस उपदेश को सुनकर वे उनके शिष्य बन गये। महात्मा बुद्ध यह उपदेश 'धर्म-चक्र प्रवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् महात्मा बुद्ध बौद्ध धर्म का प्रचार करते रहे। वे कपिलवस्तु भी गये और उन्होंने अपने पुत्र राहुल, आ नन्द को अपना शिष्य और अपनी पत्नी यशोधरा को अपनी शिष्या बनाया।

(6) निर्वाण—धर्म का प्रचार करते हुए 80 वर्ष की अवस्था में महात्मा बुद्ध कुशीनगर पहुँचे। यहाँ अतिसार रोग ने उन्हें घेर लिया और 543 ई० पूर्व उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इस घटना को 'महा परिनिर्वाण' के नाम पुकारा जाता है।

महात्मा बुद्ध की शिक्षायें एवं सिद्धान्त

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं और सिद्धान्तों की चर्चा हम यहाँ संक्षेप कर रहे हैं।—

(1) चार आर्य सत्य—महात्मा बुद्ध के उपदेशों में चार आर्य सत्य विशेष महत्व है—ये चार आर्य सत्य हैं—(क) दुःख, (ख) दुःख समुदय, (ग) दुः निरोध और (घ) दुःख-निरोध मार्ग।

(क) दुःख —महात्मा बुद्ध का कथन था कि यह संसार दुःखमय है। मान विभिन्न अवस्थाओं में दुःख का अनुभव करता है। जीवन में वृद्धावस्था है, रोग और मृत्यु है। अतएव यह जीवव दुःखमय है। प्रिय का वियोग दुःख है, अप्रिय मिलन दुःख है और इच्छाओं का पूर्ण न होना भी दुःख है।

(ख) दुःख समुदय—महात्मा बुद्ध का कहना था कि दुःख का कार तृष्णा है। तृष्णा का अर्थ है लौकिक वस्तुओं का भोग, सुखों की इच्छा। तृष्णा अहंकार, कलह, द्वेष, क्रोध और दुःख को जन्म देने वाली है।

(ग) दुःख निरोध—महात्मा बुद्ध ने दुःखों के निरोध की भी बात कही उन्होंने वतलाया कि तृष्णा का नाश ही दुःखों का अन्त है और जब हमारी तृष्णा समाप्त हो जाती है, सुख-दुःख का भाव नष्ट हो जाता है, तभी हम मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

(घ) दुःख निरोध मार्ग—महात्मा बुद्ध ने तृष्णा को समाप्त करने के लि और दुःखों का अन्त करने के लिए 8 साधन बतलाये हैं जिन्हें अष्टांगिक मार्ग नाम से पुकारा जाता है। वे इस प्रकार हैं :–

(1) सम्यक् दृष्टि—व्यक्ति को उच्च दृष्टि एवं निष्पक्ष भाव से देख चाहिए।

(2) सम्यक् सकल्प—व्यक्ति को उचित संकल्प करना चाहिए।

(3) सम्यक् वाक्—व्यक्ति को अच्छी और उचित बात ही बोलना चाहिए

(4) सम्यक् कर्म—व्यक्ति को न्याय-पूर्ण और अच्छे कर्म करने चाहिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) सम्यक् जीविका—व्यक्ति को सदाचार पूर्ण ढंग से जीविका अर्जित करनी चाहिए।

(6) सम्यक् व्यायाम—व्यक्ति को उचित मात्रा में व्यायाम करना चाहिए।

(7) सम्यक् स्मृति—व्यक्ति को अच्छी बातों को ही याद रखना चाहिए।

(8) सम्यक् यजन—व्यक्ति को उचित मात्रा में ध्यान और चिन्तन करना चाहिए।

महात्मा बुद्ध के दुःखों के नाश के इस मार्ग को 'मज्झिमा प्रतिपदा' के नाम से पुकारा जाता है। इसका अर्थ यह है कि महात्मा बुद्ध ने जीवन में बीच का रास्ता अपनाने का उपदेश दिया। उनका कहना था कि न तो कठोर तपस्या करके शरीर को अधिक कष्ट देना चाहिए और न सांसारिक भोगविलास में अधिक लिप्त रहना चाहिए। इन दोनों के बीच में मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

(2) शील और आचरण की प्रधानता—महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों में शील और आचरण पर बल दिया। वे इस प्रकार हैं—(1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय (चोरी न करना), (4) अपरिग्रह, (5) ब्रह्मचर्य, (6) नृत्यगान का त्याग, (7) सुगन्ध आदि का त्याग, (8) असमय में भोजन का त्याग, (9) कोमल शय्या का त्याग और (10) कामिनी-कंचन का त्याग।

(3) ईश्वर और आत्मा में विश्वास नहीं—महात्मा बुद्ध ईश्वर और आत्मा में विश्वास नहीं करते थे। जब उनसे ईश्वर के विषय पूछा जाता था तो वे मौन हो जाते थे। वे इस संसार को ईश्वर की रचना नहीं मानते थे, वरन् कार्य और कारण की शृंखला मानते थे।

(4) कर्मवाद में विश्वास—बुद्ध जी कर्मवाद के कट्टर समर्थक थे। उनका विचार था कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल भोगना पड़ता है। श्रेष्ठ कर्मों का फल दुःखों से छुटकारा पाना है, और बुरे कामों का फल दुःख, पाप और आवागमन है। उनका विचार था कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है।

(5) पुनर्जन्म में विश्वास—ईश्वर तथा आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुए भी बुद्ध ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माना है। पुनर्जन्म भी कर्म के नियम द्वारा संचालित होता है।

(6) जाति-प्रथा का विरोध—बुद्ध ने जन्म पर आधारित जातिव्यवस्था का विरोध किया। वह ऊँच-नीच, छुआ-छूत के भेद भाव को नहीं मानते थे। बुद्ध का द्वार प्रत्येक मानव के लिए खुला था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) अहिंसा परमो धर्म :—गौतम बुद्ध वैदिक हिंसा, बलि तथा यज्ञों घोर विरोधी थे और अहिंसा पर बड़ा बल देते थे। वे समस्त प्राणियों पर दया का उपदेश देते थे।

(8) सर्वोच्च उद्देश्य निर्वाण — वह कहते थे कि मनुष्य का सबसे उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। निर्वाण का शब्दिक अर्थ 'बुझ जाना' है। जब मनु की वासनायें बुझ जाती हैं तो वह 'निर्वाण' की स्थिति को प्राप्त करता है। निर्वा प्राप्ति के पश्चात् मानव आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

बौद्ध धर्म की देन

महात्मा बुद्ध और उनके धर्म की भारतवर्ष को बहुत बड़ी देन है। बौ विचारधारा ने भारतीय संस्कृति को प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावित किया है। इसने धार्मि सरलता के आदर्श को जनता के सम्मुख रखा। कालान्तर में बौद्ध धर्म हीनयान औ महायान दो शाखाओं में बट गया। इस धर्म की महायान शाखा ने कलात्मक क्षे में भारत को बहुत बड़ी देन दी। इस धर्म का प्रचार चीन, कोरिया, तिब्ब जापान, लका, बरमा, नैपाल, स्याम, कम्बुज आदि देशों में हुआ और इन देशों भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। राजनीति के क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने सम्राटों सम्मुख लोक कल्याण, अहिंसा, और धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श रखा। बौद्ध ध ने भारतीय दर्शन को शून्यवाद और विज्ञानवाद दिया जिनका प्रभाव शंकराचार्य वेदान्त दर्शन पर दिखलाई पड़ा। कला के क्षेत्र में सांची, भरहुत और सारनाथ स्तूप, अजन्ता की गुफाएं, कला की गान्धार, मथुरा और अमरावती शैलियाँ बौद्ध ध की देन हैं। इस धर्म ने अहिंसा, परोपकार, नैतिकता और विश्वबंधुत्व आदि विकास में भी महान योगदान दिया। अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना और विश्व शां बनाये रखने के लिए भारत सरकार ने जिस पंचशील सिद्धान्त का प्रतिपादन कि उस पर बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है। भारतीय राष्ट्रीय झंडे पर अंकित चक्र महात्म बुद्ध की शांति का ही प्रतीक है।

प्रश्न 13—(1) जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी के जीवन ए उपदेशों का परिचय दीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय

(2) महावीर की जीवनी तथा शिक्षाओं के विषय में आप क्या जानते हैं? (गोरखपुर विश्वविद्याल

(3) जैन धर्म के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए (गोरखपुर विश्वविद्याल

महावीर स्वामी की जीवनी—जैन धर्म के प्रवतक स्वामी महावीर का ज 586 ई० पूर्व के लगभग वैशाली के समीप, कुण्डग्राम में हुआ था। इनके पिता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिसला था, जो राजा चेटक की बहन थी। महावीर का बचपन का नाम वर्धमान था। बाल्यावस्था में राजकुमार वर्धमान को हर प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दी गयी। युवावस्था में उनका विवाह राजकुमारी यशोदा से हुआ। उनके एक पुत्री भी उत्पन्न हुई। अपने माता-पिता के परलोक सिधारने के पश्चात् वर्धमान ने अपने अग्रज नन्दिवर्धन की आज्ञा लेकर तीस वर्ष की आयु में सन्यास ले लिया। सन्यासी हो जाने पर वर्धमान ने अत्यन्त कठोर तप द्वारा शरीर को कष्ट दिया। वे नग्न, गृह-विहीन, होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पर्यटन करते रहे। तत्पश्चात् इन्होंने घोर तपस्या आरम्भ की।

12 वर्ष की घोर तपस्या के बाद तेरहवें वर्ष में उन्हें 'जुम्भिका' ग्राम से बाहर शाल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। अब वे 'जिन' (विजयी) नाम से प्रसिद्ध हुये और उनके 'जिन' नाम के कारण उनके अनुयायी जैन कहलाने लगे। जेकोबी के अनुसार महावीर ने अपने धर्म का 30 वर्ष तक उपदेश दिया और 72 वर्ष की आयु में पावा नामक स्थान पर जो देवरिया जिले में है, 467 या 468 ई० पू० में उनकी मृत्यु हो गई।

जैन धर्म और उसके सिद्धान्त—जैन-धर्म का वास्तविक प्रवर्तक कौन था इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महावीर स्वामी से पहले जैन धर्म के 23 तीर्थंकर हो गये थे। पार्श्वनाथ 23वें और महावीर स्वामी 34वें तीर्थंकर थे। पार्श्वनाथ ने जैन धर्म के अनुयायियों के लिए 4 महाव्रत बतलाते थे—(1) सत्य बोलना (सत्य), (2) अहिंसा का पालन करना (अहिंसा), (3) चोरी न करना (अस्तेय) और (4) आसक्त न रहना (अपरिग्रह) इस प्रकार स्पष्ट है कि महावीर के पूर्व ही जैन धर्म काफी प्रचलित हो चुका था। यहाँ हम इस धर्म के सिद्धान्तों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) कर्म की प्रधानता—जैनी लोग कर्म की प्रधानता को मानते हैं। इनका विचार है कि पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर मनुष्य किसी वर्ण में जन्म लेता है। कर्मों द्वारा ही मानव का आकार, आयु, रूप रंग निश्चित होता है।

(2) अन्तिम उद्देश्य मोक्ष—मानव का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष है, इसी से उसे स्थायी शान्ति प्राप्त हो सकती है।

(3) पुनर्जन्म से छुटकारा पाना ही मोक्ष है—मानव अपने कर्मों को भोगने के लिए अनेक बार जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार वह आवागमन के जाल में फँसा रहता है। इस बन्धन से छुटकारा पाना ही 'मोक्ष' है जिसके लिए मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए।

(4) अनीश्वरवाद—जैन धर्म के मानने वाले संसार के स्रष्टा, पालनकर्त्ता और संहारक ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं। ये लोग संसार को अनादि तथा अनन्त मानते है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) तप तथा उपवास का महत्व—इस धर्म में तप तथा उपवास का बड़ा महत्व है और इनके पालन पर बड़ा बल दिया गया है। जैनियों का विश्वास है कि तप द्वारा आत्मा को शक्ति मिलती है।

(6) कर्मकाण्ड का विधि—जैनी ब्राह्मण धर्म ये कर्म-काण्डों के विरोधी हैं। वे वैदिक धर्म की पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों को मान्यता नहीं प्रदान करते।

(7) आत्मवाद—जैनी आत्मवाद को अजर-अमर मानते हैं। उनका विश्वास है कि कर्म के बन्धनों से आत्मा को शक्ति क्षीण हो जाती है। आत्मा में ज्ञान होता है और वह सुख-दुख का अनुभव करती है।

(8) त्रिरत्नों का विधान—जैनियों ने कैवल्य प्राप्त करने के लिए त्रिरत्न की आवश्वयकता पर वल दिया। उनका कहना है कि इन रत्नों पर आचरण करने से मनुष्य बन्धन से छुटकारा पा सकता है। ये त्रिरत्न हैं—(1) सम्यक् ज्ञान, (2) सम्यक् दर्शन, (3) सम्यक् चरित्र। इनका पालन करने से मनुष्य को न केवल ज्ञान प्राप्त होता है वरन् वह कर्म के जंजाल से भी छुट्टी पा जाता है।

(9) पंच महाव्रत—जैनधर्म में आत्मिक उन्नति के लिए पंच महाव्रत का विधान है। ये पंच महाव्रत हैं—(1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य, (5) अपरिग्रह। जैन धर्म के अहिंसा के पालन पर वड़ा वल दिया गया है। सत्य बोलने के लिए मनुष्य को क्रोध, भय, लोभ, लोक पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। अस्तेय का अर्थ चोरी न करना है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है विषय-वासनाओं को त्याग देना। अपरिग्रह का अर्थ किसी वस्तु में आसक्त न रहना हैं। अपरिग्रह के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। उपर्युक्त पंच महाव्रत महावीर ने ग्रहस्थों के लिये वताये हैं। महावीर ने साधुओं को भी पंच महाव्रत पालन का उपदेश दिया था। परन्तु उनके ये व्रत अत्यन्त कठोर थे।

कालान्तर में जैन धर्म दो सम्प्रदायों में बट गया—(1) श्वेताम्वर और (2) दिगम्बर। दोनों ही सम्प्रदायों ने सामाजिक क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला। हिन्दू धर्म के अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों को खोखला सिद्ध करने का श्रेय जैन धर्म को ही है। भारतीय कला, साहित्य पर जैन धर्म की वहुत बड़ी छाप है। खण्ड गिरि, उदयगिरि की कन्दराएँ, आबू का जैन मन्दिर और महावीर की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ जैन धर्म की महान कलात्मक देन हैं। राजनीति, धर्म-शास्त्र, ज्योतिष और व्याकरण आदि के क्षेत्र में भी जैन धर्म की देन है।।

प्रश्न 14—इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जीवन परिचय देते हुए इस्लाम के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक का जीवन परिचय देते हुए इस्लाम धर्म के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख सिद्धान्त बतलाइए। भारत पर इस्लाम के प्रभाव का विवेचन भी प्रस्तुत करें।

मुहम्मद साहब का जीवन परिचय--इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई० में मक्का में हुआ। जब मुहम्मद साहब बहुत छोटे थे तभी उनके माता-पिता का देहान्त हो गया और उन्हें अत्यन्त निर्धनता में जीवन बिताना पड़ा। निर्धनता के कारण उन्हें शिक्षा भी नहीं प्राप्त हुई और वह अपने चाचा के साथ भेड़ें चराते रहे और बाद में व्यापार करने लगे। 22 वर्ष की अवस्था में खदीजा नामक एक धनाढ्यविधवा से विवाह हुआ जिससे उनके 6 सन्तानें हुईं। 40 वर्ष की अवस्था में मुहम्मद साहब को दिव्य-ज्ञान की प्राप्ति हुई जब कि जिब्राइल नामक एक फरिश्ते ने आकर बतलाया कि वह अल्लाह के पैगम्बर हैं और उनका कार्य संसार में धर्म को प्रसारित करना है। मुहम्मद साहब ने तब से धर्म प्रसार का बीड़ा उठाया। सबसे पहले उन्होंने धर्म की दीक्षा अपनी स्त्री खदीजा को दी और इसके बाद उनके अनेक शिष्य हो गये। मुहम्मद साहब एकेश्वरवादी थे और मूर्ति पूजा के विरोधी थे। उस समय काबे में 360 मूर्तियों की पूजा होती थी। इस कारण मुहम्मद साहब की हँसी उड़ायी गई और उनके अनुयायियों पर अनेक अत्याचार किये गये। मुहम्मद साहब भाग कर मदीने पहुँचे। मदीना में उनका स्वागत हुआ और उन्होंने वहाँ एक मस्जिद बनवाई। इसके बाद उन्होंने मक्का पर आक्रमण किया और अनेक हमलों के बाद वह मक्का पर अधिकार करने में सफल हुए। इसके बाद मुहम्मद साहब ने इस्लाम धर्म के प्रचार का कार्य तेजी से किया। 8 जून, 632 ई० को उनकी मृत्यु हो गई।

इस्लाम धर्म के सिद्धान्त—मुहम्मद साहब ने जिस धर्म का प्रचार किया उस धर्म के सिद्धान्त अत्यन्त सरल हैं और इस धर्म के अनुयायी मुसलमान कहलाते हैं। मुसलमानों का प्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थ 'कुरान' है। इस धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

(1) एकेश्वरवाद में विश्वास—इस्लाम धर्म के अनुयायियो का विश्वास एक अल्लाह में है। वह कहते हैं कि अल्लाह एक है उसे और सब को याद करना चाहिए। वह सब कुछ देखने वाला और अत्यन्त दयावान है। सभी की प्रार्थना सुनकर वह उनकी आवश्यकताओं को पूरा करता है।

(2) मनुष्य मात्र में समानता—इस्लाम धर्म यह कहता है कि सभी जीव अल्लाह के बेटे हैं। वह कहता है कि न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अमीर-गरीब, जाति-रंग, ऊँच-नीच के आधार पर कोई भेदभाव उचित नहीं है।

(3) कर्म, स्वर्ग-नर्क और फरिश्तों में विश्वास—मुहम्मद साहब का कहना था कि अच्छा कार्य करने वाले व्यक्ति अल्लाह के सबसे बड़े भक्त हैं। अच्छे व्यक्ति को जन्नत (स्वर्ग) और बुरे व्यक्तियों को दोजख (नर्क) की प्राप्ति होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम धर्म के अनुयायियों के अनुसार फरिश्ते मनुष्य और अल्लाह के बीच मध्यस्थता का कार्य करते हैं।

(4) मानव जाति की सेवा—इस्लाम धर्म मानव सेवा को ही सच्चा सुख मानता है और कहता है कि इसी से अल्लाह प्रसन्न होता है।

(5) नैतिक जीवन में विश्वास—मुहम्मद साहब का विश्वास नैतिक जीवन में था अतएव उनके धर्म में चरित्र की उज्ज्वलता, गरीबों और बीमारों की सेवा यादि पर विशेष बल दिया गया है।

(6) तीन अंग और पाँच आदेश—इस्लाम के तीन अंग हैं और उसमें आचरण के लिये 5 आदेश हैं। यहाँ उनका उल्लेख किया जा रहा है—

(1) ईमान—इसका अर्थ धार्मिक विश्वास है अर्थात अल्लाह, इसके फरिश्तों पैगम्बर और फैसले के दिन में श्रद्धा।

(2) इह्सान—इसका तात्पर्य है सत्कर्मों में प्रवृत्ति और दुष्कर्मों से निवृत्ति।

(3) इबादत—इबादत अर्थात उपासना-पद्धति। इसके पाँच अंग हैं—

(1) अल्लाह के अलावा दूसरा ईश्वर नहीं, मुहम्मद अल्लाह का पैगम्बर है— कुरान की इस आयात का जाप।

(2) दिन में पाँच बार नमाज, शुक्रवार को सार्वजनिक नमाज।

(3) आय का ढाई हिस्सा दान।

(4) रोजा और,

(5) हज।

भारत पर इस्लाम धर्म का प्रभाव—इस्लाम धर्म भारत में तलवार के बल पर आया और आरम्भ में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बहुत बड़ी खाई यहाँ बनी। इस धर्म के फलस्वरूप भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन आया। यहाँ दास प्रथा का प्रसार हुआ। मुस्लिम वेश-भूषा का प्रचलन हुआ और पर्दा प्रथा देखने को मिली। कालान्तर में धर्म, साहित्य, कला के क्षेत्र में भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। इस्लाम और हिन्दू धर्म के संसर्ग के फलस्वरूप अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इन सम्प्रदायों ने मूर्ति पूजा का विरोध किया, एकेश्वरवाद का समर्थन किया, पुरोहितों की प्रभुता, धार्मिक कर्मकाण्ड और वाह्य आडम्बर का विरोध किया। मोक्ष की प्राप्ति हेतु भक्ति, श्रद्धा और विश्वास पर बल दिया। यदि भारत में इस्लाम न आया होता तो कबीर और दादू भी न आते। डा० ताराचन्द का विश्वास है कि इस्लाम ने लिंगायत सम्प्रदाय को प्रभावित किया। इस्लाम के प्रवेश ने प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति में योगदान दिया। मुस्लिम सन्तों ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार में प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग किया। रामानन्द, कबीर, कुतुबन, मंझन और जायसी आदि संतों ने हिन्दी में रचना की। अमीर खुसरो, मझन, कुतुवन, जायसी, रहीम, आदि मुसलमान विद्वानों की हिन्दी भाषा को देन है। कला, वेश-भूषा, भोजन आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी इस्लाम का प्रभाव पड़ा। यदि भारत में इस्लाम का प्रवेश न हुआ होता तो आज हमें ताजमहल, लाल किला और कुतुबमीनार जैसी इमारतें देखने को न मिलतीं।

प्रश्न 15—सिक्ख धर्म के प्रमुख विचारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
'ग्रन्थ साहब' के बारे में संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।
गुरु नानक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

सिक्ख धर्म का प्रवर्तन गुरु नानक ने किया। गुरु नानक का जन्म पंजाब प्रांत में रावी नदी के किनारे तालवन्दी नामक ग्राम में 1459 ई० में हुआ। गुरु नानक हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्मों से असन्तुष्ट थे। वह निराकारवादी थे और अवतारवाद, जाति-पाँति, तीर्थ, सतीप्रथा आदि के विरोधी थे। वह वेदान्त दर्शन से प्रभावित थे। उनका कहना था कि माया बन्धन कारक है और निर्वाण ही जीवन का लक्ष्य है। निर्वाण की प्राप्ति मूर्ति पूजा या बाह्य आडम्बर से न होकर आन्तरिक साधना से होती है। गुरु की कृपा से व्यक्ति अहंकार और माया से मुक्ति प्राप्त करता है। गुरु नानक का नारा था, 'सत् श्री अकाल' अर्थात् सत्य ही ईश्वर है। गुरु नानक ने नाम जप, ध्यान, समाधि, और राजयोग पर विशेष बल दिया। उन्होंने शराब, तम्बाकू आदि का विरोध किया।

गुरु नानक की रचना को 'ग्रन्थ साहब' के नाम से पुकारा जाता है। इसे आदि ग्रंथ भी कहा जाता है। गुरु नानक के वचनों को सबसे पहले उनके प्रधान शिष्य अंगद ने गुरुमुखी लिपि में लिखा। उनकी भाषा में पारसी, पंजाबी, सिन्धी, मुल्तानी, अरबी, संस्कृत और ब्रज भाषा का सामंजस्य है। 'ग्रन्थ साहब' का संकलन और सम्पादन करके उसका वर्तमान रूप इसके पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने 1604 ई० में प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ के वर्तमान रूप में प्रथम पाँच गुरुओं और 9 वें गुरु तेज बहादुर के वचन तथा गुरु गोविन्द सिंह का एक दोहा है। गुरु गोविन्द सिंह की रचनाएँ 'दशम् ग्रन्थ' कहलाती हैं।

गुरु नानक की जो मान्यताएँ थीं सिक्ख धर्म में उनको मान्यता प्रदान की गई है। गुरु नानक के उपदेशों को सारांश रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) सभी मनुष्य बराबर हैं। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों एक ही ईश्वर की सन्तान हैं।

(2) सत्य ही ईश्वर है। वह मनुष्य के अन्तःकरण में उसी प्रकार निवास करता है जैसे फूल में सुगन्ध।

(3) ईश्वर मनुष्य की आत्मा मे निवास करता है। उसे बाह्याडम्बरों से नहीं, वरन् भक्ति तथा ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है।

(4) उनका कहना था कि दलितों, दरिद्रों, दुखियों, असहायों, दीनों व बीमारों की सेवा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

(5) संसार की समस्त चीजें नाशवान हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) संसार मायाग्रस्त है। ईश्वर ही मात्र सत्, चित्, आनन्द है। उसी का ध्यान करना चाहिए।

(7) ईश्वर के स्मरण मात्र से ही कल्याण हो सकता है।

(8) ईश्वर की प्राप्ति में गुरु सहायक है। गुरु का महत्व सर्वोपरि है।

गुरु नानक के बाद सिक्ख धर्म पनपता रहा और अंगद, अमर दास, राम दास, क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे गुरु हुए। इस समय तक सिक्खों का सम्प्रदाय शान्त, विनयी और भावुक भक्तों का था। पाँचवें गुरु अर्जुन देव के समय में सिक्खों पर मुगलों ने अत्यधिक अत्याचार किया और गुरु अर्जुन देव की मृत्यु भी जहाँगीर के अत्याचारों के फलस्वरूप हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सिक्खों ने यह समझा कि जप और माला मात्र से धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। छठें गुरु हरि गोविन्द ने राजा और योद्धा का परिधान ग्रहण किया और उसके बाद से यह परम्परा चल पड़ी। सातवें गुरु हर कृष्ण राय हुए। नवें गुरु तेग बहादुर ने औरंगजेब से लोहा लिया और इस्लाम न स्वीकार करने के कारण औरंगजेब ने उनकी हत्या करवा दी। इससे क्षुब्ध होकर दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्ख पंथ को पूरी तरह से सैनिक रूप दे डाला। खालसा दल की स्थापना हुई और केश, कंघी, कच्छा, कड़ा, कृपाण धारण करना प्रत्येक सिक्ख के लिए अनिवार्य कर दिया गया। गुरु गोविन्द सिंह की परम्परा ने सिक्खों के दो रूप प्रस्तुत किये—(1) वीर और सिपाही वाला, (2) भक्त वाला। सिक्ख धर्म के अनुयायी आज भी काफी बड़ी संख्या में भारत में विद्यमान हैं। इसके साथ ही एशिया के विभिन्न देशों में तथा कुछ पाश्चात्य देशों में भी यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

प्रश्न 16—ईसाई धर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

ईसाई धर्म के विशिष्ट सिद्धान्त क्या हैं ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

ईसा मसीह (जीसस क्राइस्ट) पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

ईसाई धर्म के संस्थापक ईसा मसीह का जन्म फिलिस्तीन के जूडा राज्य में हुआ। उनका जीवन निर्धनता और सादगी में बीता। उन्होंने ईश्वर की एकता, निष्पक्षता और सर्ववत्सलता का प्रतिपादन किया। ईश्वर का पितृत्व (Fatherhood of God) और मानवमात्र का भ्रातृत्व (Brotherhood of Mem) उनके उपदेशों का सार है। ईसा मसीह ने प्रेम करने, मानव सेवा, परोपकार, बुराई के बदले भलाई करने पर विशेष बल दिया। उन्होंने दया, क्षमा, सहानुभूति को महान गुण बतलाया। दरिद्रों और शोषितों के लिए उन्होंने नारा बुलन्द किया। उन्होंने दीन दुर्बल लोगों को ईश्वर के राज्य का सदस्य और उसके पुरस्कारों का सच्चा पात्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। ईसा मसीह का अपने समय में विरोध किया गया और उन्हें शूली पर लटका दिया गया।

ईसा की हत्या के बाद ईसाई धर्म का प्रचार शनैः शनैः हुआ। कालान्तर में यह विश्व धर्मों में गिना जाने लगा। कालान्तर में 'न्यू टेस्टामेण्ट' की पुस्तक का सम्पादन हुआ और उसके 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' के साथ संयुक्त संस्करण बाइबिल के नाम से पुकारा गया जो कि ईसाइयों का प्रमुख धर्म ग्रन्थ है। इसमें ईसा के उपदेशों को स्थान दिया गया है और यही ईसाई धर्म के प्रमुख आदेश हैं। ईसा मसीह ने पुराने यहूदी धर्म से 10 ईश्वरीय आदेश ग्रहण किया जो कि ईसाई धर्म के मूल आधार हैं। ये आदेश हैं—

(1) ईश्वर एक ही है और उसके अतिरिक्त किसी में विश्वास न करो।
(2) ईश्वर की सौगन्ध व्यर्थ में मत खाओ।
(3) सातवें विश्राम दिवस के नियमों का पालन करो।
(4) माता-पिता का आदर करो।
(5) हत्या न करो।
(6) ईश्वर की मूर्ति मत बनाओ।
(7) व्यभिचार मत करो।
(8) चोरी मत करो।
(9) झूठी गवाही मत दो।
(10) पड़ोसी की सम्पत्ति की इच्छा मत करो।

ये आदेश अधिकतर नकरात्मक हैं। ईसा ने दुष्कर्मों के साथ ही दुर्भावनाओं का भी निषेध किया। उन्होंने नैतिकता को धर्म में प्रमुख स्थान दिया और नकारात्मक आदेशों की जगह उन्होंने विध्यात्मक आदेश भी दिए। पड़ोसी के धर्म की इच्छा करना ही काफी नहीं है बल्कि समय पर उसकी मदद करना भी मनुष्य का कर्तव्य है। उन्होंने कहा, 'तुमने सुना है कि तुम्हें अपने पड़ोसियों से प्रेम करना चाहिए और शत्रुओं से घृणा करनी चाहिए। पर मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने शत्रुओं से प्रेम करो, जो तुम्हें आश्रय देते हैं उन्हें आशीर्वाद दो, जो तुमसे घृणा करते हों उनके साथ अच्छा व्यवहार करो......... ।

ईसा ने हिंसा को अहिंसा से, घृणा को प्रेम से, और बुराई को भलाई से जीतने का सन्देश दिया। उन्होंने कहा, "यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चाँटा मारे तो तुम उसके सामने अपना बायाँ गाल भी कर दो।" "पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।" ईसा ने नम्रता, क्षमा, दान, मानव मात्र से प्रेम और ईश्वर के सम्मुख आत्म समर्पण तथा सबसे बढ़कर करुणा का सन्देश दिया। दुःखी मानव को उन्होंने ईश्वर की कृपा का पहला अधिकारी माना और धन को ईश्वर की प्राप्ति का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाधक । ईसा ने तत्कालीन प्रावृत्तिपरक यहूदी धर्म से संन्यास युक्त भक्ति का मार्ग निकाला ।

ईसाई धर्म का प्रसार संसार के विभिन्न देशों में अत्यधिक तेजी से हुआ और आज संसार में सबसे अधिक जनसंख्या ईसाई धर्म के मानने वालों की है ।

प्रश्न 17—आर्य समाज और ब्रह्म समाज का आधुनिक हिन्दू धर्म को क्या योगदान है ? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

आर्य समाज और ब्रह्म समाज के विषय में आप क्या जानते हैं ।

भारत में इस्लाम का प्रचार तलवार के बल पर हुआ । इस धर्म के प्रसार के साथ ही हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ आ गई । जब अँग्रेजी राज्य में सीधे-साधे सिद्धान्तों वाले ईसाई धर्म का प्रचार यहाँ हुआ तो बहुत से भारतीय ईसाई धर्म की ओर उन्मुख हो गये और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कि हिन्दू धर्म पूर्णतः समाप्त हो जायगा । ऐसे समय में कुछ ऐसे विचारक उत्पन्न हुए जिन्होंने एक ओर हिन्दू धर्म की पुरानी विचार धारा में संशोधन करके, उसे बौद्धिक नींव पर खड़ा करके, हिन्दू धर्म की रक्षा की और दूसरी ओर समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया ।

इन विचारकों में राजा राम मोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उन्होंने क्रमशः ब्रह्म समाज और आर्य समाज की स्थापना करके भारतीय जनजीवन की बहुत बड़ी सेवा की । यहाँ इन दोनों धर्मों के विषय में संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है ।

(1) ब्रह्म समाज

सामान्य परिचय—आधुनिक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों में ब्रह्म समाज का विशिष्ट स्थान है । इस आन्दोलन के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे । उनका जन्म एक बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था । वह पाश्चात्य सभ्यता से बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्हें अरबी, फारसी, संस्कृत तथा अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान था । हिन्दू धर्म की कुरीतियों को दूर करने के हेतु सन् 1828 ई० में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसकी प्रथम बैठक 20 अगस्त, 1828 ई० को कलकत्ता में हुई । राजा राममोहन राय हिन्दू धर्म में प्रचलित जाति-पाँति, छुआछूत, मूर्ति-पूजा बहु-विवाह, सती-प्रथा आदि को दूर करना चाहते थे और अनेक हिन्दुओं को, जिनको अपने धर्म से श्रद्धा न थी, धर्म की ओर उन्मुख करना चाहते थे । उनका मत था कि वैदिक धर्म अत्यन्त पवित्र, शुद्ध, सरल और अनुकरणीय है और उसी वैदिक विचारधारा को ही उन्होंने अपने ब्रह्म समाज में स्थान दिया ।

सिद्धान्त—ब्रह्म समाज के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) परमात्मा एक है और वह सम्पूर्ण सद्गुणों का केन्द्र एवं भण्डार है ।

(2) वह सृष्टि का रचयिता और संरक्षक है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) वह न कभी जन्म लेता है और न कभी देह धारण करता है।

(4) वह केवल प्रार्थना सुनता है और उसे स्वीकार करता है।

(5) जीवात्मा अमर है और वह अपने कर्मों के हेतु परमात्मा के प्रति उत्तरदायी है।

(6) सभी जातियों के लोगों को ईश्वर की पूजा करने का अधिकार है। उसकी पूजा एवं भक्ति के हेतु मन्दिर और मस्जिद में जाने तथा अन्य आडम्बर करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(7) परमात्मा की पूजा शुद्ध आत्मा से होनी चाहिए।

(8) मनुष्य को पाप का त्याग करना चाहिए और सभी धर्मों से सत्य को ग्रहण करना चाहिए।

(9) ईश्वर पापियों और पुण्यात्माओं को उनके कर्म के अनुसार दण्ड देता है अथवा पुरस्कार।

(10) किसी पुस्तक को दैवीय नहीं मानना चाहिए क्योंकि कोई भी पुस्तक त्रुटि रहित नहीं होती।

(11) ईश्वर मानकर किसी वस्तु की पूजा नहीं करनी चाहिए।

(12) मनुष्य को प्रज्ञा, परोपकार और पवित्रता द्वारा ईश्वर की भक्ति में लीन हो जाना चाहिए क्योंकि यही सच्चा मोक्ष है।

योगदान—ब्रह्म समाज का भारतीय समाज और हिन्दू धर्म को महान योगदान है। राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख रखा और धर्म को नवीनता की कसौटी पर कसने का प्रयास किया। यही कारण है कि सुभाषचन्द्र बोस ने उन्हें एक युगदूत के नाम से पुकारा है। उन्होंने लिखा है—

"Raja Rammohan Rai stood as the apostle of religious revival......Raja Rammohan Rai, therefore, stands against the dawn of the awakening in India as the prophet of the new age."

धार्मिक चेतना के साथ ही राजा राममोहन राय ने सामाजिक सुधार का जो बीड़ा उठाया वह भी चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने सती-प्रथा को बन्द करने का प्रयास किया और भ्रूण-हत्या, बलि-प्रथा आदि के विरुद्ध आवाज लगाई। पं० जवाहर लाल नेहरू ने उनके विषय में लिखा है—"वे केवल एक विद्वान और अन्वेषक ही नहीं थे, वे एक सुधारक भी थे। आरम्भ में उन पर इस्लाम का असर हुआ था और बाद में कुछ हद तक ईसाई धर्म का, लेकिन फिर भी वह अपने धर्म में दृढ़ता के साथ जमे रहे। उस धर्म की उन्होंने उन कुरीतियों और कुप्रथाओं से, जो उस समय उनसे जुड़ गई थीं, छुड़ाने की कोशिश की। सती-प्रथा बन्द करने के लिए उन्हीं के आन्दोलनों की वजह से विशेष रूप से सरकार ने उस पर रोक लगाई।" राजा राम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन राय उन महान व्यक्तियों में से थे जिन्होने बहुत से हिन्दुओं को ईसाई होने से रोका। वह हिन्दू धर्म को विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा उतारना चाहते थे।

राजा राम मोहन राय मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। उनके विषय में श्री ब्रिजेन्द्र नाथ सिंह लिखते हैं—

"Raja Rammohan Rai was the harbinger of Universal Humanism...the humanist, pure and simplc watching from his comming tower the procession of Universal Humanity in Universal History." —Britjendra Nath Singh.

श्री के० एम० पाणिक्कर ने उनके सुधारों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "धार्मिक सुधारों में राजा राममोहन राय ने जो योगदान किया उसको भारतवासी नहीं भूल सकते हैं।"

ब्रह्म समाज के दो रूप—राजा राममोहन राय की मृत्यु के पश्चात् ब्रम्ह समाज में फूट पड़ गई और उसमें दो दल बन गये। एक दल के नेता देवेन्द्र नाथ टैगोर और दूसरे दल के नेता श्री केशवचन्द्र सेन थे। देवेन्द्र नाथ टैगोर उपनिषदों पर बहुत अधिक विश्वास करते थे और जाति-पाति तोड़ने पर अधिक बल देते थे। ब्रम्ह समाज की इस शाखा को 'आदि समाज' के नाम से पुकारा जाता है। श्री केशवचन्द्र सेन ईसाई मत से अधिक प्रभावित थे और वे ईसा के बहुत प्रशंसक थे। वह हिन्दू समाज में आमूल परिवर्तन के इच्छुक थे। ब्रह्म समाज की इस शाखा को 'प्रार्थना समाज' के नाम से पुकारा जाता है।

ब्रह्म समाज ने हिन्दू धर्म और भारतीय समाज की बहुत अधिक सेवा की। परन्तु इस मत के अनुयायी भारत में अधिक संख्या में नहीं हैं, केवल बंगाल में रहने वाले 5-6 हजार व्यक्ति ही इस मत के अनुयायी हैं।

(2) आर्य समाज

सामान्य परिचय—भारत के धार्मिक और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1824 ई० में गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। शान्ति की खोज में बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर त्याग दिया और मथुरा आकर स्वामी विरजानन्द के शिष्य बन गये। तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन् 1874 ई० में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उनका धार्मिक दृष्टिकोण प्रमुख रूप से स्पष्ट हुआ है।

सन् 1875 ई० में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। वे हिन्दू समाज के बहुत बड़े उद्धारक थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने निम्नलिखित विषयों की ओर ध्यान दिया :—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ाना।
(2) हिन्दी भाषा तथा साहित्य को प्रोत्साहन।
(3) वैदिक संस्कृत के पठन-पाठन पर जोर।
(4) स्त्री-शिक्षा का प्रसार तथा नारियों का उद्धार।

स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के सच्चिदानन्द रूप को स्पष्ट किया है। 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपने देश और अपने राज्य का नारा लगाया था। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया, हिन्दू समाज की रक्षा के लिए 'शुद्धि आन्दोलन' को जन्म दिया। इससे पूर्व जो हिन्दू मुसलमान हो गये थे, उन्हें पुनः हिन्दू बनाने का प्रयास किया। स्वामी दयानन्द के प्रयत्नों से उनका शुद्धि आन्दोलन समस्त देश में फैल गया और ईसाई तथा मुसलाभान धर्म का प्रसार रुक गया।

स्वामी दयानन्द प्राचीन संस्कृति के उपासक थे। इसी आधार पर वे शिक्षा का रूप निर्माण करना चाहते थे। वह अँग्रेजी पढ़े-लिखे न थे, परन्तु उनका दृष्टिकोण उदार तथा सुधारवादी था। उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया था और अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे थे कि बहु-विवाह तथा बाल-विवाह हिन्दू परम्पराएँ नहीं हैं। उन्होंने विधवा-विवाह को उचित बताया और छुआछूत को धार्मिक दृष्टि से अनुचित बताया।

स्वामी दयानन्द का मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं था। उनके अनुसार मूर्ति-पूजा वैदिक धर्म के प्रतिकूल है। भारतीयों में राजनीतिक चेतना का संचार भी स्वामी दयानन्द ने किया। उन्होंने देश-प्रेम और संस्कृति प्रेम सिखाया। 'स्वभाषा' और 'स्वराज्य' शब्दों का सर्व प्रथम प्रयोग उन्होंने किया। उनके प्रमुख शिष्यों में धर्मवीर, गुरुदत्त, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द आदि थे।

सिद्धान्त—आर्य समाज के दस प्रसिद्ध सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

(1) सब पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं; सब सत्य विद्या का मूल कारण परमात्मा है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधिकार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्ता है। उसी की उपासना करना उचित है।

(3) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, और सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(4) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

(5) सब कार्य धर्मानुसार करना चाहिए।

(6) संसार का उपकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वरतना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(9) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(10) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालन करने में स्वतंत्र रहना चाहिये।

योगदान—भारत को आर्य समाज का महान् योगदान है। इस समाज ने भारत धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं-

(अ) धार्मिक योगदान—आर्य समाज में एकेश्वरवाद को मान्यता दी गई और हिन्दूसमाज के कर्मकाण्डों और पुरोहितवाद का विरोध किया गया। इस समाज ने वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया और वैदिक रीति से यज्ञ, हवन, प्रार्थना, सत्संग आदि करके निराकार ईश्वर की उपासना के सिद्धांत को सामने रखा। आर्य समाज तीर्थ स्थान और अवतार वाद का विरोधी है। वह आत्मज्ञान का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए खोल देने का पक्षपाती है। आर्य समाजियों के अनुसार समस्त ज्ञान का स्रोत वेद है और वेदों का अध्ययन करने का अधिकार प्रत्येक स्त्री पुरुष को चाहे वह किसी जाति का हो है, आर्य समाज ने ही जनता में हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न करके हिन्दुओं को और धर्मों के चङ्गुल से बचाया।

(ब) सामाजिक योगदान--सामाजिक क्षेत्र में भी आर्य समाज का योगदान है, आर्य समाजियों ने स्त्रियों और पुरुषों की समानता पर बल दिया, छुआ-छूत का अन्त किया, विधवा विवाह का समर्थन किया, बहुविवाह, बाल-विवाह और बेमेल विवाह का प्रबल विरोध किया। आर्य समाजी जन्त्र-मंत्र, जादू-टोना और अन्य अन्धविश्वासों को मान्यता नहीं प्रदान करते। अत: उन्होंने इनका भी खुलकर विरोध किया। शादी विवाह, जीवन मरण आदि की रीतियों को सरल बनाने का कार्य आर्य सामाजियों ने किया। उन्होने अनाथों और विधवाओं की दशा को सुधारने का प्रयास किया और देश में अनेक अनाथालयों और विधवाश्रमों की स्थापना की। शैक्षिक जगत में भी आर्य-समाज की महान देन है। गुरुकुल और डी० ए० वी० कालेज तथा अन्य संस्थाओं की स्थापना करके उन्होंने भारतीय जनता को शिक्षित बनाने का घोर प्रयास किया।

(स) राजनीतिक योगदान—राजनीतिक क्षेत्र में भी आर्य-समाजियों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। स्वामी दयानन्द पहले ऐसे भारतीय थे जिन्होंने स्वदेशी और स्वराज्य की आवाज उठाई। मिसेज एनीबेसेण्ट ने लिखा है—

"It was Dayanand Saraswati who first proclaimed that India was for the Indians.'

स्वामी जी ने भारतीयों का ध्यान अपने गौरवशाली अतीत की ओर आकर्षित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराया और उनमें देश भक्ति की भावना जागृत की। हिन्दी और संस्कृत के प्रसार के लिए उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द और उनके आर्य समाज ने भारत की राजनीतिक चेतना, सामाजिक निर्माण, और धार्मिक पुनरुत्थान के लिए जो कार्य किया वह सदैव याद रखा जायगा।

अध्याय ४

भारतीय कला

प्रश्न 8—भारतीय वास्तु कला के इतिहास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

भारतीय वास्तु कला का विश्व की वास्तुकला में अपना अलग स्थान है। सिन्धुघाटी की खुदाई में वास्तु कला के नमूने अवश्य उपलब्ध हुए हैं। उस युग में अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी भवनों आदि का निर्माण किया गया था। उस युग की वास्तुकला में विषय में सराजान मार्शल लिखता है, "ईसा से 3,000 वर्ष या इससे पहले पंजाव और सिन्ध के लोग सुनियोजित नगरों में रहते तथा वे अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व संस्कृति के अधिष्ठाता थे। उनकी कला तथा शिल्प का स्तर उच्च था......" वैदिक काल के वास्तु कला के नमूने प्राप्त नहीं होते। वैदिक युग में वस्तु रचना काष्ठ प्रधान थी और उस युग का कोई स्मारक अवशेष नहीं बचा। मौर्य युग में स्तम्भों और लाटों के रूप में वास्तु कला के श्रेष्ठ नमूने प्राप्त हुए हैं। अधिकतर मुख्य अवशेषों का सम्बन्ध महान सम्राट अशोक से है। अशोक ने अपने धर्म के प्रचार के लिए इनका निर्माण करवाया था। साँची के विश्व प्रसिद्ध स्तूप का निर्माण मूलतः अशोक ने करवाया था और यहाँ से उस स्तूप परम्परा का विकास होता है जो भारतीय वास्तु कला में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अशोक के स्तम्भ भारतीय वास्तुकला के उज्ज्वल नमूने हैं। स्तूपों का निर्माण महात्मा बुद्ध के दाँत, केश या भस्म आदि किसी चीज को सुरक्षित रखने के लिए हुआ है। अण्डाकार स्तूप के ऊपर एक 'हर्मिका' जिसके ऊपर वौद्ध धर्म के त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म और शान्ति) का संकेत करने वाले तीन छत्र होते हैं। उसके चारों ओर की चहारदीवारी को वेदिका कहा जाता है जिसमें मुख्य दिशाओं की ओर चार तोरण (द्वार) होते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने आजीवक साधुओं के निवास के हेतु वारवर की पहाड़ियों में गुफाओं का निर्माण करवाया। इसी परम्परा में आगे चलकर विहारों का विकास हुआ पहले कुछ गुफाओं का निर्माण हुआ। पूजा के हेतु एक चैत्यगुहा का निर्माण किया जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जिसके भीतरी कोने पर बहुधा छोटा सा स्तूप होता था। इस चैत्यगुहा के आस-पास भिक्षुओं के हेतु गुफायें बनाई जाती थीं। इन्हे ही विहार कहा जाता था। कालान्तर में विहार, गुफाओं के अतिरिक्त भवनों के रूप में बनने लगे। नालन्दा आदि विश्वविद्यालय इसके उदाहरण हैं। परन्तु फिर भी गुफाओं का निर्माण वातापी के चालुक्यों तक होता रहा :

मूर्ति पूजा के प्रभाव स्वरूप देव मन्दिरों के रूप में भारतीय वास्तु कला का विकास हुआ। यह मन्दिर तीन शैलियों में बनाये गये—(1)—उत्तर भारत की नागर शैली, (2) दक्षिण भारत की दक्षिण शैली, और (3) इन दोनों का मिश्रण वेसर शैली। आर्य शैली के मन्दिर खजुराहो, राजपूताना और उड़ीसा में प्राप्त होते हैं। उड़ीसा के भव्य मंदिरों में पुरी का जगन्नाथ जी का मन्दिर, कोर्णार्क सूर्य मन्दिर और भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राजपूत काल में हिन्दू वास्तु कला अपनी उन्नतिकी चरम शिखर तक पहुँच गयी। उत्तरी भारत के साथ ही दक्षिण भारत में बड़े-बड़े मन्दिरों आदि का निर्माण हुआ।

मुसलमानों के भारत आगमन से भारतीय वास्तु कला के नवीन रूप के दर्शन हुए। इस समय मकबरों और मस्जिदों का निर्माण मुख्य रूप से हुआ। मुस्लिम वास्तुकला सादगी में ही सौन्दर्य खोजती थी। ताजमहल, मोती मसिजद, गोल-गुम्बद, बुलन्द दरवाजा आदि की वास्तु कला में सादगी के दर्शन होते हैं। मुस्लिम और हिन्दू वास्तु कला के सम्मिश्रण से एक नई प्रकार की शैली का जन्म हुआ। जोधाबाई का महल और मान मन्दिर में इस मिश्रित वास्तु कला के सुन्दर दर्शन होते हैं।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्तूप, विहार, चैत्यगुहायें, स्तम्भ, विशाल मन्दिर, मकबरे, मस्जिदें, भारतीय वास्तु शिल्प के प्रतिनिधि के रूप हैं जिसके माध्यम से कहीं भारतीय कला की विविधता झाक रही है तो कहीं सादगी। कहीं विशालता और वैभवपूर्ण प्रभावात्मिकता के दर्श होते हैं तो कहीं महान और गणनीय अलंकरण की कारीगरी। भारतीय वास्तुकला मुख्य रूप से धार्मिक रही है और इस कारण इसमें अन्तः सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर विशेष ध्यान दिया गया है।

प्रश्न 2—भारत में बौद्ध कला की उत्पत्ति और उसके विकास के विषय में आप क्या जानते हैं ? **(गोरखपुर विश्वविद्यालय)**

भारतीय कला का उज्ज्वल रूप हमें बौद्धकला के रूप में प्राप्त होता है। अशोक के समय से यह बौद्ध कला उभर कर हमारे सम्मुख आती है और तभी से उसका निरन्तर विकास होता रहा। बौद्ध कला के नमूने लाटों, स्तूपों, विहारों, गान्धार और मथुरा शैली की मूर्तियो एवं अजन्ता की चित्र कला में देखने को मिलते हैं। यहाँ उनकी चर्चा संक्षेप में की जा रही है।

(1) लाटें—सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए दिल्ली, मेरठ, लोरिया, नन्दन गढ़, अरा राज्य, रायपुरवा, प्रयाग, साँची, सारनाथ आदि में पाषाण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तम्भों की स्थापना करवाई। उन पर धर्मादेश खुदवाये गये। शीर्षों पर धर्म चक्र, और हाथी, सिंह, अश्व, बैल आदि की मूर्तियाँ बनवाई गईं। एक ही पत्थर के बने हुए यह ढलानदार स्तम्भ आजकल के इन्जीनियरों को आश्चर्यचकित कर देते हैं। इनकी पालिश अत्यन्त चमकदार है और यह उनको अत्यधिक कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करती है। स्तम्भों की यह परम्परा आगे प्राप्त नहीं होती है और बौद्ध कला के ये सुन्दर नमूने मुख्य रूप से अशोक के समय के ही मिलते हैं।

(2) स्तूप—बौद्ध कला के सुन्दर नमूने स्तूपों के रूप में भी प्राप्त होते हैं। स्तूप अण्डाकार होता है और एक ऊँचे चबूतरे पर बना होता है। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध के अवशेषों के 8 भाग कराकर प्रत्येक के ऊपर एक स्तूप का निर्माण किया गया। अशोक ने अवशेषों को निकलवाकर इन पर 84,000 स्तूप बनवाये। स्तूप की आकृति एक उल्टे कटोरे की भाँति होती है। इसका आधार कुछ ऊँचा होता है जिसके चारों ओर एक घेरा होता है जिसे कि वेदिका के नाम से पुकारा जाता है। स्तूप के ऊपरी सिरे पर 'हर्मिका' होती है। 'वेदिका' और 'स्तूप' के बीच के स्थान को 'प्रदक्षिणा पथ' कहा जाता है।

बौद्धों के प्रारम्भिक स्तूपों में सांची के स्तूप विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसका निर्माण सम्भवतः अशोक ने तीसरी शताब्दी ई० पू० में करवाया था और बाद में सातवाहनों के समय में इनका पुनः विस्तार हुआ। आजकल इस स्तूप के तले का व्यास 121½ फीट और ऊँचाई 77½ फीट है। अशोक द्वारा जो स्तूप बनवाये गये वे आकार में छोटे थे। इस स्तूप के एक सिरे पर एक लघु चौकोर 'हर्मिका' है और इसके मध्य में छत्रयष्टि है। वेदिका के तीन मुख्य भाग हैं—(1) स्तम्भ, (2) सूची—जो दो स्तम्भों के बीच में फँसाई गई है, और (3) उष्णीय पट्ट का अलंकरण जो स्तंभों को मिलाने वाला है। वेदिका के भीतरी स्तूप के चारों ओर परिक्रमा करने का मार्ग है। सांची के स्तूप में दो प्रदक्षिणा पथ प्राप्त होते हैं। वेदिका में लगे चारों दिशाओं में अलंकृत तोरण (द्वार) हैं जिनमें लगे हुए प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई 14 फीट है। स्तम्भों के ऊपरी भाग में लगी पट्टियों पर महात्मा बुद्ध से संबंधित घटनायें उत्कीर्ण की गई हैं। सिंह, हाथी, धर्म-चक्र, यक्ष, मोर, हिरण आदि अत्यन्त सफाई से उत्कीर्ण किये गये हैं। इस बड़े स्तूप के अतिरिक्त सांची में दो छोटे स्तूप भी हैं।

अशोक के समय का एक दूसरा स्तूप भरहुत का स्तूप है जिसका पता 1875 में कनिंघम ने लगाया था। इस स्तूप का कुछ ही भाग शेष है। स्तूप अब नष्ट हो चुका है परन्तु उसके अवशेष कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस स्तूप का मूल भाग अशोक के समय में निर्मित हुआ परन्तु उसकी वेदिका एवं तोरण द्वारों का अधिकांश शुंग काल में बनाया गया। वेदिका के एक भाग पर लिखा है, 'शुंगन' जिससे सिद्ध यह होता है कि शुंग काल में इसका निर्माण हुआ। इस स्तूप के तले का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास 68 फुट था। इसकी वेदिका पर जो कलाकृतियाँ अंकित हैं वह भारतीय कला के इतिहास में अपना अलग स्थान रखती हैं।

इन दो प्रमुख स्तूपों के अतिरिक्त बौद्ध गया, अमरावती आदि स्थानों के स्तूप भी उल्लेखनीय हैं। कनिष्क के शासन काल में भी अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ। उसकी राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) में 400 फुट ऊँचा एक स्तूप बनवाया गया था जिसका आधार 150 फुट है और जो अब नष्ट हो चुका है। गुप्त युग में बनाये गये 2 स्तूप राजगिरि और सारनाथ में प्राप्त हो रहे हैं। 128 फुट ऊँचा सारनाथ का धमेक स्तूप कला की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखता है।

विहार—स्तम्भों तथा स्तूपों के अतिरिक्त बौद्ध कला के दर्शन विहारों में भी होते हैं। अजन्ता, वार्ली, भांजा आदि स्थानों पर चैत्यों के पास ही विहार प्राप्त हुये हैं। विहारों का निर्माण ईंटों से होता था। परन्तु सामान्यतया ये पहाड़ों को काटकर गुफाओं के रूप में बनाये जाते थे। अशोक और उसके पौत्र दशरथ ने बारबर और नागार्जुन पर्वतों पर विहारों करवाया था। उनमें भिक्षुओं से रहने के लिए चारों ओर कमरो का निर्माण किया जाता था। उनकी पालिश अत्यंत सुन्दर और आकर्षक होती थी। विहारों की दीवारों पर महात्मा बुद्ध और उनके जीवन से सम्बन्धित भित्ति चित्र प्राप्त हुये हैं। कौशाम्बी में घोषिताराम विहार के कुछ अवशेष प्राप्त हुये हैं।

शिल्प की गान्धार और मथुरा शैलियाँ—ऊपर हमने बौद्ध वास्तु-कला का उल्लेख किया है। बौद्ध शिल्पकला गान्धार और मथुरा शैलियों में विकसित हुई है। इन शैलियों में महात्मा बुद्ध की अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया है। इन शैलियों का उल्लेख हमने इस अध्याय के प्रश्न 5 एवं 6 के अन्तगत विस्तार से किया है।

बौद्ध चित्रकला—वास्तुकला और शिल्पकला के साथ ही बौद्ध चित्रकला का भी अपना अलग महत्व है। चित्रकला के यह सुन्दर नमूने अजन्ता की गुफाओं में देखे जा सकते हैं। अजन्ता की चित्रकला का उल्लेख हमने इस अध्याय में ही अन्यत्र विस्तार से किया है।

प्रश्न 20—प्राचीन भारतीय मन्दिरों के विषय में आप क्या जानते हैं?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

हिन्दू मन्दिर स्थापत्य की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

हिन्दू मन्दिर वास्तु-कथा की मुख्य विशेषतायें क्या है?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

मन्दिरों के रूप में हिन्दू वास्तुकला के उत्कृष्ट रूप के दर्शन होते हैं। भवनों में देवताओं की पूजा के लिये बनाई गई मूर्तिया स्थापित की जाती हैं भवनों को मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है। मन्दिरों का प्रादुर्भाव गुप्तकाल में प्रतीत होता है क्योंकि इससे पहले के मन्दिरों के काई अवशेष प्राप्त नहीं होते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु मन्दिरों की कल्पना काफी प्राचीन है। ऐसा आभास होता है कि पहले लकड़ी के मन्दिर बनाये जाते थे। प्रतीक पूजा जितनी प्राचीन है मन्दिर भी लगभग उतने ही प्राचीन हैं। गुप्तकाल में मन्दिरों का विशेष विकास हुआ और मिट्टी एवं इंटों के अनेक मन्दिर बनाये गये। ये गुप्तकालीन मन्दिर एक चबूतरे पर निर्मित हैं। और इनके ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। गुप्तकाल के प्रारम्भिक दिनों के मन्दिरों की छतें चिपटी होती थीं परन्तु बाद के मन्दिर में शिखर प्राप्त होते हैं। गुप्त युग में बने हुये मन्दिर के अवशेष भूमरा, नचना. तिगवा, लड़खान, एरण, साँची, भितरगाँव, बोधगया और देवगढ़ में प्राप्त हुये हैं। देवगढ़ के मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट हैं। इनका निर्माण छठी शताब्दी में माना जाता है।

मन्दिर की आधारभूत योजना—मोटे तौर पर सभी हिन्दू मन्दिरों की योजना छठी शताब्दी से लेकर आज तक एक ही रही है। मन्दिर के केन्द्रीय भाग में एक छोटा कमरा होता है जिसमें प्रधान मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है। इसे गर्भ-गृह के नाम से पुकारा जाता है। गर्भ-गृह सामने एक बड़े कमरे की ओर खुलता है जिसे कि मण्डप कहा जाता है। ये उपासकों के हेतु होते हैं। किन्हीं मन्दिरों मे विशाल सभा-भवन भी प्राप्त होते हैं। परन्तु इनका निर्माण अनिवार्य नहीं है। गर्भ-गृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ भी प्राप्त होता है। मण्डप में जाने के हेतु द्वार के साथ ही एक बड़ा मण्डप भी होता है। गर्भ-गृह के ऊपर एक शिखर होता है। शिखर के ऊपर आमलक और उसके ऊपर कलश एवं ध्वजदण्ड होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मन्दिर के ऊपर अन्य छोटे शिखर भी होते हैं।

बहुधा मन्दिर के साथ ही एक आंगन भी होता है। कभी-कभी अन्य छोटे कमरे भी होते हैं। किसी-किसी मन्दिर के सामने एक बरामदा भी रहता है। 11वीं शताब्दी में दक्षिण के मन्दिरों में विशाल फाटक भी लगाये जाने लगे जिसे गोपुर, भी कहा जाता था। इस प्रकार गोपुर, प्रांगण और सभामण्डप से युक्त दक्षिण के मन्दिर एक नगर का लघु रूप लगते हैं।

मन्दिरों के भेद—मन्दिरों का विभाजन विभिन्न प्रकार से किया गया है। फर्ग्यूसन ने इनके भेद आर्यावर्त, चालुक्य और द्रविड़ नाम से किया है। कुमारस्वामी ने इनका विभाजन उत्तरीय (विन्ध्य पर्वत के उत्तर), माध्यमिक (पश्चिमी भारत, दक्षिणी पठार और मैसूर) और दक्षिणी (मद्रास और उत्तरी लंका) ये 3 भेद बताये हैं। मोटे तौर पर मन्दिरों के दो भेद किये जा सकते हैं—आर्य या उत्तर भारतीय और द्रविड़ या दक्षिणी भारतीय। इन मन्दिरों में मुख्य अन्तर शिखर विषयक है। उत्तर भारतीय मन्दिरों का शिखर एक मीनार के समान गोल, चौकोर अथवा अन्य किसी आकार के हैं जो ऊपर की ओर त्रिकोण की भाँति पतले होते जाते हैं। दक्षिण भारतीय मन्दिरों के शिखर कई मंजिलों वाले होते हैं और ऊपर के मंजिल निचले मंजिलों की अपेक्षा छोटे होते जाते हैं जिससे शिखर पिरामिड के आकार के होते जाते है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारत के मन्दिर—उत्तर भारतीय या आर्यशैली के मन्दिर बुन्देलखंड, राजस्थान, गुजरात आदि स्थानों पर मुख्य रूप से देखे जा सकते हैं। उड़ीसा के मन्दिरों का निर्माण दसवीं तथा 13वीं शताब्दी तक होता रहा। आर्य शैली के बने हुये मन्दिरों में पुरी का जगन्नाथ मन्दिर, कोणार्क का सूर्य मन्दिर और भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पुरी का जगन्नाथ मन्दिर और कोणार्क का सूर्य मन्दिर रथ के आकार के हैं। भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर आर्यशैली का सर्वतोत्कृष्ट नमूना है। इसका शिखर 180 फुट ऊँचा है। उत्तरी भारत की दूसरी प्रमुख शैली हमें खुजराहो के मन्दिरों के रूप में दिखलाई पड़ती है। खजुराहो में कँदरिया महादेव का मन्दिर भव्य और सुन्दर है। इसका शिखर 116 फुट ऊँचा है। खजुराहों के मन्दिरों का अलंकरण विशेष प्रसिद्ध है। उत्तरी भारत की तीसरी प्रमुख शैली में गुजरात और राजस्थान के नाम जुड़े हैं। इस शैली के सर्वतोत्कृष्ट मन्दिर आबू के पास और तेलवाड़ा के पास स्थित दो जैन मन्दिर हैं। ये दोनों मन्दिर संगमरमर के हैं और इनमें अलंकरण का बाहुल्य है।

दक्षिणी भारत के मन्दिर—दक्षिण भारत के मन्दिरों की सबसे प्राचीन शैली पल्लव शैली है जिसका विकास 6ठी और 8वीं शताब्दी के मध्य हुआ है। पल्लव शासकों ने विशाल चट्टानों को कटवा कर मामल्लपुरम् में उत्कृष्ट मन्दिरों का निर्माण करवाया था, जिन्हें रथ कहा जाता है। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण ने एलोरा में कैलाश मंदिर बनवाया था। यह मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह 142 फुट लम्बा 190 फुट ऊँचा और 62 फुट चौड़ा है। दसवीं और ग्यारवीं शताब्दी में चोल सम्राटों ने भी अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया था। राजराजा प्रथम द्वारा 958 ई० में तंजौर में बनवाया गया 14 मन्दिरों का राजराजेश्वर मन्दिर तथा राजेन्द्र प्रथम द्वारा बनवाया गया गंगई कोण्ड चोलपुरम मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध है। पांड्य शैली में गोपुरम (प्रवेश द्वारा) बनाये गये। इस शैली में अलंकरण की प्रधानता है। मथुरा, श्रीरंगम, आदि स्थानों पर इस शैली के मन्दिर प्राप्त होते हैं। होयसल शासकों द्वारा बनाये गये मन्दिरों में द्वार समुद्र का होयसलेश्वर का मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध है। चालुक्यों द्वारा बनाये गये मंदिरों में योगेश्वर के मंदिर विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न 21—भारत के प्रमुख मस्जिदों, मकबरों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

मस्जिद—वह इमारत जहाँ कि मुसलमान लोग सामूहिक रूप से नमाज पढ़ते हैं, मस्जिद कहलाती है। मस्जिद में एक विशाल प्रवेश द्वारा होता है जिसके ऊपर बुर्ज होता है। साधारणतया उसमें 3 द्वार होते हैं, बीच का बड़ा और दोनों ओर के छोटे। प्रवेश द्वार के बाद एक विशाल खुला सहन होता है जिसे नमाजगाह कहा जाता है। इसके दोनों ओर दालानें होती हैं जिनमें अधिकतर छोटे-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे कमरे मालियों या उनके शिष्यों के रहने के लिये बने होते हैं। सहन के आगे पूजा का स्थान होता है जिसे इबादतखाना कहा जाता है। मस्जिद के ऊपर 3 गुम्बज होते हैं जिनमें बीच का बड़ा और किनारे के छोटे होते हैं। मस्जिद के 2 कोनों पर मीनारें भी हुआ करती हैं।

दिल्ली सुल्तानों और मुगल सम्राटों द्वारा अनेक मस्जिदों का निर्माण करवाया गया। कुतुबुद्दीन एबक द्वारा बनवाई गई कुवत-उल-इस्लाम मस्जिद भारत में बनी पहली मस्जिद है। यह दिल्ली के समीप रायपिथौरा के किले के मध्य में स्थित है। कालान्तर में इल्तुतमिश और अलाउद्दीन ने इसमें परिवर्तन करवाये। कुतुबुद्दीन एबक ने एक अन्य मस्जिद भी बनवाई जो "अढ़ाई दिन का झोपड़ा" के नाम से उल्लेखनीय है। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा बनवाई गई "जमाअत मस्जिद" विशेष रूप से उल्लेनीय है। मोठ की मस्जिद लोदी वंश के शासकों द्वारा बनवाई गई थी जो अपने गुम्बद के लिये विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मुगलवंश के शासक बाबर ने 2 मस्जिदों का निर्माण करवाया परन्तु उनमें शिल्पकला से सम्बंधित कोई विशेषता नहीं हैं। हुमायूँ ने हिसार जिले में फातिहाबाद की मस्जिद बनवाई जिस पर ईरानी ढंग की पच्चीकारी दिखाई पड़ती है। अकबर द्वारा बनवाई गई फतहपुर सीकरी की जामा मस्जिद अत्यन्त विख्यात है। यह मक्का की मस्जिद के नमूने पर आधारित है। 542 फुट लम्बी, 438 फुट चौड़ी इस मस्जिद की योजना पद्धति फारसी है परन्तु इस पर हिन्दू कला का प्रभाव है। शाहजहाँ के समय में आगरा में 3 मस्जिदों का निर्माण हुआ, जिनमें "नगीना मस्जिद", "मोती मस्जिद" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "नगीना मस्जिद" संगमरमर की बनी हुई है जिसका निर्माण हरम की महिलाओं के लिये किया गया गया था। मोती मस्जिद आगरे के किले में बनी हुई है जिसका निर्माण 1654 ई० में हुआ था। शाहजहाँ ने दिल्ली में लाल किले के पास जामा मस्जिद बनवाई जो आज भी अपना अलग महत्व रखती है।

भारत के विभिन्न प्रान्तीय शासकों ने भी अनेक मस्जिदों का निर्माण करवाया। गुजरात में अहमदशाह की बनवाई हुई जामा मस्जिद, सिकन्दर शाह द्वारा बनवायी हुई 'अदीना मस्जिद' अत्यन्त भव्य है। 'लोटन मस्जिद', छोटा सोना मस्जिद, और 'बड़ा सोना मस्जिद' आदि अनेक प्रसिद्ध मस्जिदें हैं। जौनपुर की 'अटाला मस्जिद' अत्यन्त प्रसिद्ध है। मालवा की मस्जिदों में 'जामा मस्जिद' 'दिलावरखाँ मस्जिद', अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। काश्मीर की मस्जिदों के श्रीनगर की जामा मस्जिद और शाह हम्दान की मस्जिद विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्षिणी भारत की मस्जिदों में गुलबर्गा और बीदर की मस्जिदें विशेष प्रसिद्ध हैं।

मकबरे—मुसलमानों में विशिष्ठ जनों की कब्र पर उनकी याद को चिरस्थायी बनाने के लिये जो इमारत बनवायी जाती है उसे मकबरे के नाम से पुकारा जाता है। मकबरे में कब्र के ऊपर एक वर्गाकार कक्ष होता है। कक्ष के बाहर दालान होती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके बाहर बगीचे आदि होते हैं। कक्ष की दीवारों पर अलंकरण किया जाता है और कुरान की आयतों को खुदवाया जाता है। इमारत के ऊपर एक गोल गुम्बद और चारों ओर चार मीनारें होती हैं। दिल्ली के सुल्तानों और मुगल सम्राटों द्वारा अनेक मकबरों का निर्माण करवाया गया। 'नासिरुद्दीन का मकबरा' भारत का पहला मकबरा था जिसका निर्माण इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरुद्दीन मुहम्मद के लिये करवाया था। इल्तुतमिश का मकबरा सल्तनत युग का दूसरा मकबरा है। गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा, फिरोजशाह का मकबरा, खानेजहाँ तिलंगानी का मकबरा और कबीरुद्दीन औलिया का मकबरा सल्तनत काल के प्रसिद्ध मकबरे हैं।

मुगल काल में बने हुये मकबरों में शेरशाह का मकबरा जो बिहार में सहसराम नामक स्थान पर है और झील के बीच में एक ऊँची कुर्सी पर बना हुआ है, हिन्दू मुस्लिम कला के सामन्जस्य का एक सुन्दर नमूना है। हुमायूँ का मकबरा जिसका निर्माण उसकी सौतेली माँ हाजी बेगम ने करवाया, दिल्ली में ईरानी शैली में दिखलाई पड़ता है। फतहपुर सीकरी में बना हुआ 'शेख सलीम चिश्ती का मकबरा' मुगल स्थापत्य कला का एक सून्दर नमूना है। उस पर हिन्दू कला का प्रभाव देखा जा सकता है। सिकन्दरा में स्थित अकबर का मकबरा जहाँगीर के समय पूरा हुआ। उसका निर्माण अकबर के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। यह मकबरा पाँच मजिल का है। ऊपर की मंजिलें नीचे की मंजिलों से क्रमशः छोटी होती गयी हैं इस मकबरे में हिन्दू, बौद्ध, मुसलिम और इसाई शैलियों का सुन्दर सामन्जस्य हुआ है। 1626 ई० में आगरा में नूरजहाँ ने अपने पिता एत्मादुद्दौला का मककरा बनवाया था। इस मकबरे में सबसे पहले संगमरमर पर पच्चीकारी का कार्य हुआ। जहाँगीर के समय में दूसरा मकबरा लाहौर के पास शाहदरा में स्थित है। दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मकबरा 'ताजमहल' है जिसे शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताजमहल की कब्र पर यमुना नदी के किनारे आगरे में बनवाया था। 18 फिट ऊंचे और 313 वर्ग फीट चबूतरे पर बने हुये संगमरमर का यह मकबरा बेजोड़ है। ताजमहल की पूरी इमारत 1900 फुट लम्बी तथा 100 फुट चौड़ी है। उसके गुम्बज की ऊँचाई 187 फुट और चारमीनारों की ऊँचाई 127 फुट है। ताजमहल अपनी सजावट, सुन्दर पत्थरों की जुड़ाई और सफेद संगमरमर की जालियों के निर्माण के फलस्वरूप अत्यन्त सुन्दर इमारत है। वह संसार के आश्चर्यों में से एक है। इसकी सुन्दरता का गुण-गान देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने किया। विभिन्न विद्वानों ने इसे 'संगमरमर का स्वप्न' और 'प्रकृति सुन्दरी के गाल पर उभरा हुआ अश्रु' कहा है। विश्व की वास्तुकला में ताजमहल का अपना अलग स्थान है।

प्रश्न 15—गान्धार कला की उत्पत्ति एवं विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

गान्धार मूर्ति शिल्प कला का संक्षिप्त विवरण दीजए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तिकला की गान्धार-शैली—बौद्ध धर्म की महायान शाखा के उदय के साथ भारतीय मूर्तिकला की एक नवीन शैली का विकास हुआ जिसे कि हम गान्धार कला के नाम से पुकारते हैं। चूँकि यह शैली गान्धार प्रदेश में विकसित हुई इसीलिए इसका नाम गान्धार-शैली पड़ा। गान्धार प्रान्त उस जगह स्थित है जहाँ भारतीय, यूनानी, रोमन, ईरानी और चीनी संस्कृतियों का सम्मिलन होता है। इस कारण इन सब का प्रभाव गान्धार कला पर पड़ा। यह शैली मुख्य रूप से यूनानी हेलेनिस्टिक और रोमन कला से प्रभावित है। इस शैली को 'इण्डो ग्रीक', 'ग्रीसोरोमन', 'ग्रीक बुद्धिस्ट' शैली के नाम से पुकारा जाता है।

मूर्ति कला की इस शैली का विकास मुख्य रूप से शक और कुषाण नरेशों की छत्रछाया में हुआ। फूशे, स्मिथ और मार्शल आदि विद्वानों का मत है कि महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण सबसे पहले इसी शैली में किया गया और इस शैली के प्रारम्भ से पहले महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण नहीं होता था। अनेक विद्वानों का मत है कि यह शैली मुख्य रूप से विदेशी शैली है परन्तु विद्वानों का दूसरा वर्ग इसके पीछे भारतीय प्रेरणा का ही दर्शन करता है।

गान्धार शैली का प्रधान केन्द्र गान्धार, तक्षशिला, पाकिस्तान का उत्तरी पश्चिमी प्रान्त और अफगानिस्तान के अनेक प्राचीन स्थल थे। इस शैली में काफी मात्रा में महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया गया। साथ ही इसमें बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों और कहानियों का अंकन किया गया। गान्धार शैली की मूर्तियाँ काले स्लेटी पाषाण, चूने मसाले और पकाई हुई मिट्टी से निर्मित की जाती थीं। इन मूर्तियों को सुनहले रंग से सुशोभित किया जाता था। पेशावर, लाहौर, और अन्य संग्रहालयों में गान्धार शैली की मूर्तियों के नमूने सुरक्षित हैं। वे पत्थर की हैं परन्तु तक्षशिला में पाषाण प्रतिमाओं के अतिरिक्त चूने मसाले की पकाई हुई मिट्टी की कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यह कथन पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है कि बुद्ध मूर्तियों का निर्माण सबसे पहले गान्धार शैली में ही हुआ। इसके पहले महात्मा बुद्ध का अंकन सांकेतिक चिन्हों के रूप में किया जाता था। महात्मा बुद्ध की उपस्थिति को बोधिवृक्ष, पदचिन्ह, रिक्त आसन और छत्र आदि के द्वारा प्रकट किया जाता था। गान्धार शैली में महात्मा बुद्ध और बोधिसत्वों की सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण ध्यानमुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा और धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में किया गया। गान्धार कला का समय 50 ई० पू० से 500 ई० तक माना जाता है

गान्धार-शैली की विशेषताएँ—गान्धार शैली की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

(1) गान्धार-शैली के कलाकारों ने भगवान बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण यूनानी शैली से प्रभावित होकर किया। उनके हाथ, पैर तथा हृदय भारतीय थे परन्तु मस्तक यूनानी था। यही कारण है कि गान्धार शैली में निर्मित बुद्ध की मूर्तियाँ अपोला की मूर्तियों से बहुत मिलती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) गान्धार-शैली में महात्मा बुद्ध एक संन्यासी की अपेक्षा एक राजा लगते हैं। उन्हें स्वर्ण-जटित वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है। यह चित्रण भारतीय परम्परा के विपरीत है।

(3) बुद्ध को सोने के सिंहासन कर बेठे हुए दिखाया गया है, परन्तु भारतीय शैली के अन्तर्गत वे पद्मासन लगाये हुए हैं।

(4) गान्धार-शैली में मिर्मित बुद्ध की मूर्तियों का दाहिना कन्धा नग्न रहता है। बुद्ध के दाढ़ी भी दिखाई गई है।

(5) प्रतिमाएँ स्लेटी पत्थर की वनाई गई हैं।

(6) गान्धार-शैली में मानव शरीर को वास्तविक रूप में चित्रित किया गया है। अंग-प्रत्यंग, मांसपेशियों के साथ मूछों आदि की सूक्ष्मता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

(7) मोटे वस्त्रों को दिखाते समय वस्त्रों की सिलवटें सूक्ष्मता से दिखाई गई हैं। केशों का अंकन यूनानी ढंग का है।

(8) इस शैली में सुन्दर नक्काशी, अलंकरण तथा प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। वाह्य भाव–भंगिमाओं के चित्रण में इस शैली के कलाकारों को विशेष सफलता मिली है।

(9) महात्मा बुद्ध के मुख के चारों ओर प्रभा-मण्डल बनाया गया है। तेज चक्र सज्जा से शून्य है।

(10) गान्धार कला के अन्तर्गत नारी प्रतिमाओं का बहुत कम निर्माण हुआ है।

गान्धार-शैली का अन्य शैलियों पर प्रभाव—मूर्ति कला की गान्धार शैली का मथुरा शैली और अमरावती शैली पर क्या प्रभाव पड़ा यह एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है। अनेक विद्वानों का मत है कि मथुरा शैली पर गान्धार शैली ने अपनी पूरी छाप डाली है परन्तु विद्वानों का दूसरा वर्ग इससे सहमत नहीं है। गान्धार शैली केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही बल्कि यह मध्य एशिया और जापान आदि में भी प्रचलित हुई।

प्रश्न (16) मथुरा कला की उत्पत्ति, विकास एवं विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

मथुरा मूर्ति शिल्प का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

कुषाण युग में गान्धार की भाँति ही मथुरा भी शिल्प कला का एक प्रमुख केन्द्र है। अनेक विद्वानों का यह विचार है कि मथुरा शैली की उत्पत्ति गान्धार शैली के प्रभाव के फलस्वरूप ही हुई परन्तु विद्वानों का दूसरा वर्ग इसे स्वीकार नहीं करता है और कहता है कि मथुरा की प्राचीन कृतियाँ गान्धार कला के उदय से पूर्व की हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविकता यही प्रतीत होती है कि मथुरा कला की उत्पत्ति साँची, भरहुत आदि की प्राचीन परम्पराओं से हुई है। प्रथम शताब्दी ई० में मथुरा में बहुत बड़ी संख्या में महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बनने लगी थीं। बाद में ये मूर्तियाँ श्रावस्ती, सारनाथ, तक्षशिला और मध्यएशिया आदि में पहुँचने लगीं। मथुरा की मूर्तियाँ लाल चित्तीदार पत्थर की बनाई जाती थीं जो कि मथुरा के निकट तांतपुर, फतेहपुर सीकरी, आदि स्थानों पर प्राप्त होती हैं। मथुरा कला की मूर्तियाँ गान्धार कला की मूर्तियों की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं। गान्धार कला में भव्यता है परन्तु मथुरा कला में बारीकी है। मथुरा कला हृदय की कला है और इसमें अन्तस्तल को छूने की क्षमता है। जहाँ गान्धार कला में अधिकतर महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण हुआ है, मथुरा कला में मुख्य रूप से हिन्दू मूर्तियों के साथ ही बुद्ध एवं जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ है।

मथुरा की हिन्दू मूर्तियाँ—मथुरा में हिन्दू देवताओं की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ब्रह्मा की कुषाण कालीन दो मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें से एक मूर्ति में ब्रह्मा के तीन मुख एक सींग में दिखाये गये हैं और चौथा मुख मध्य वाले सिर के पीछे है। महात्मा बुद्ध की मूर्तियों के समान ही इन मूर्तियों में प्रभा मण्डल दिखलाया गया है। मथुरा शैली में शिव की भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। एक स्थान पर कुछ शक शिव लिंग की पूजा करते हुए दिखलाये गये हैं। कुषाण एवं गुप्त युग के अनेक सुन्दर शिवलिंग मथुरा में प्राप्त हुए हैं। एक चतुर्भुजी शिव की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। गुप्त काल में बनी हुई नान्दी के सहारे खड़े हुए शिव पार्वती की मूर्ति बहुत सुन्दर है। एक मूर्ति में रावण को पहाड़ उठाते हुए दिखलाया गया है और उसमें पार्वती भयभीत और शिव जी क्रोधित दिखलाये गये हैं। कुषाण युग में बनी हुई विष्णु की कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनकी निर्माण शैली प्रारम्भिक कुषाण कालीन महात्मा बुद्ध की मूर्तियों से बहुत मिलती है। भगवान कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित भी अनेक मूर्तियाँ मथुरा शैली में प्राप्त हुई हैं। एक मूर्ति में वासुदेव को कृष्ण को सूप में रखे हुए यमुना पार करते हुए दिखलाया गया है। एक मूर्ति में बलराम को हल लिए हुए दिखलाया गया है। मथुरा कला में बनी हुई सूर्य मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

मथुरा की जैन मूर्तियाँ—कुषाण काल से पहले ही मथुरा में जैन मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। मथुरा नगर के पश्चिम में स्थित काली टीला जैन धर्मानुयायियों का प्रमुख केन्द्र था। मथुरा कला में आदि नाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी आदि की कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

मथुरा की बौद्ध मूर्तियाँ—मथुरा की बौद्ध मूर्तियाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। महात्मा बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं में यहाँ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ भारी शरीर वाली हैं। महात्मा बुद्ध को मुण्डित सिर वाला दिखलाया गया है और उनकी मूछें नहीं हैं। उनका दाहिना कन्धा नग्न है और वस्त्र को नीचे को गिरते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाया गया है। महात्मा बुद्ध कमलासन पर विराजमान हैं। अधिकतर मूर्तियों में आभा मण्डल दिखलाया गया है। ध्यान मुद्रा, अभय मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा और धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

अन्य मूर्तियाँ—मथुरा शैली में हिन्दू, बौद्ध, जैन मूर्तियों के साथ ही अन्य प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया गया। अनेक आकृतियाँ वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं। यक्ष, किन्नर और नाग की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। मथुरा से लगभग 8 मील दूर माट नामक स्थान पर कुषाण राजाओं की मूर्तियाँ मिली हैं। इस शैली में यक्ष, यक्षिणियाँ और अन्य प्रकार की मूर्तियाँ भी बनाई गई हैं। कुछ अश्लील प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी मूर्तियों में आन्तरिक सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया गया है।

प्रश्न 17—अजन्ता की कला का वर्णन कीजिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

अजन्ता की कला विशेषताओं को व्यक्त कीजिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

अजन्ता की चित्रकला का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारत के चित्रकला-इतिहास में अजन्ता की चित्रकला अपना विशेष महत्व रखती है। अजन्ता चित्रों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम जानकारी 1819 ई० में एक अंग्रेज पदाधिकारी को लगी। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अजन्ता की प्रत्येक गुफा में चित्र थे किन्तु आज वे सभी चित्र प्राप्त नहीं हैं। केवल 1, 2, 9, 10, 16 तथा 17 नम्बर की गुफाओं के चित्र प्राप्त हुए हैं।

अजन्ता के कुछ चित्र ई० पू० प्रथम शताब्दी के हैं। प्रथम तथा दूसरी गुफा के चित्र सातवीं शताब्दी के हैं तथा अन्य चित्र 400-500 ई० के मध्य के हैं। अजन्ता चित्रकला के कुछ चित्र अविकसित हैं, इससे ज्ञात होता है कि ये भिन्न-भिन्न कालों में बनाये गये थे। इनमें कुछ चित्र शुंगकालीन तथा कुषाण-कलाओं के हैं। अजन्ता के अधिकांश चित्र धर्म प्रधान हैं।

अजन्ता चित्र कला की शैली—भारत के प्राचीन चित्रों में एक ही रंग का प्रयोग देखने को मिलता है। एक ही रंग से लाइट और शेड दिया जाता था। शायद पौधों के रेशों की शलाका बनाई जाती थी और रंगों को पीसने के लिए पाषाण-खण्डों का प्रयोग किया जाता था। चित्र बनाते समय पूर्व सतह पर प्लास्टर की प्रणाली प्रचलित नहीं थी। सीधे चट्टान पर ही चित्र बनाये जाते थे। जोगीमारा की गुफाओं में इसी प्रकार की चित्रकारी है।

अजन्ता की गुफाओं में सबसे पहले प्लास्टर करने के अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। चित्र बनाने के पूर्व चट्टान पर प्लास्टर किया जाता था। प्लास्टर मिट्टी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवर और टूटी हुई चट्टानों के टुकड़ों को पीस कर बनाया जाता था। कभी-कभी उनमें भूसा और धान का छिलका भी मिश्रित कर लिया जाता था। सबसे पहले, दीवाल को करनी से चिकना किया जाता था, जिससे गुफा बनाते समय होने वाले छेनी के गड्ढे पूरी तरह भर जायँ तथा रंगने में सुगमता हो। पहले लेप ¾ इंच से ⅛ इंच तक मोटा होता था। पहले लेप को करनी से चौरस किया जाता था और फिर हल्के चूने का लेप किया जाता था।

अजन्ता की चित्रण-प्रणाली के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें विशुद्ध फ्रेस्को प्रणाली को अपनाया गया है और कुछ के अनुसार विशुद्ध टेम्पेरा अथवा प्रेस्को टेम्पेरा को। कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीयों के फ्रेस्को प्रणाली के चित्र भारी और स्थायी होते हैं। अजन्ता में इन दोनों शैलियों का मिश्रण देखने को मिलता है।

जब उपर्युक्त वर्णित रीति द्वारा रंगने के लिए धरातल तैयार हो जाता था तब गेरू से चित्र की प्रारम्भिक रूप रेखा बनाई जाती थी। कभी-कभी गेरू के रङ्ग पर गहरे काले अथवा भूरे रङ्ग से सुधार किया जाता था। कदाचित् यह कार्य कला-कारी के विशेषज्ञ करते थे। इन चित्रों में बहुत सीमित रङ्गों का प्रयोग किया गया है। रङ्ग इस प्रकार होते थे कि चूने पर लगाने में परिवर्तन न हो। अजन्ता में सफेद, पीले, बादामी, हरे तथा नीले रङ्गों का प्रयोग किया गया है। श्वेत रंग चूने से बनता था। लाल बादामी रंग लोहे व संखिया से बनाया जाता था। बहुमूल्य पत्थरों से नीला रंग बनता था। यह पत्थर बदख्शां एवं फारस से आता था। इन गुफाओं में लाइट और शेड का प्रयोग हुआ। इसको प्रदर्शित करने के लिए परस्पर विरोधी रंगों का प्रयोग किया जाता था और अधिक गहरे और हल्के रङ्गों का प्रयोग किया जाता था।

रूप रेखा तैयार करने के पश्चात् रंगों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता था कि दो विरोधी रंग एक साथ न आवें। कभी-कभी रूप-रेखा की लाल रेखा के ऊपर पारदर्शक हरे रंग का प्रयोग किया जाता था। एक रंग भरने के उपरान्त उसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता था और तत्पश्चात् दूसरे रंग का प्रयोग किया जाता था।

चित्रकला का विषय—अजन्ता की चित्रकला निम्नलिखित तीन भागों में बाँटी गई है—(1) आलेखन, (2) वर्णन, (3) अलंकरण।

आलेखन में महात्मा बुद्ध के चित्र आते हैं। वर्णन में जातक कथाओं के चित्र हैं। अलंकरण हेतु पशु, पक्षी, लता, यक्ष, गन्धर्व आदि के चित्र चित्रित किये गये हैं।

चित्र का विभाजन एक अन्य रीति से भी किया गया है—

(1) बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र—इस प्रकार के चित्रों में प्रथम गुफा का मार विजय चित्र, अवलोकितेश्वर का विशाल चित्र, 16 वीं गुफा में बुद्ध देव के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहत्याग का चित्र, माता पुत्र का प्रसिद्ध चित्र, छद्दंत जातक तथा नाग जातक के विभिन्न चित्र, वेस्सन्तर जातक के वानप्रस्थी राजकुमार का चित्र आदि उल्लेखनीय हैं।

(2) बुद्ध धर्म से सम्बन्ध न रखने वाले चित्र—गुफा नं० 1 में कुछ विदेशी पुलकेशिन द्वितीय को भेंट देते हुए चित्रित किये गये हैं। इसी गुफा की छत पर बने चित्र में विदेशी सम्राट को अपनी रानी के साथ मदिरा पान करते हुए दिखाया गया है। स्त्रियों के विभिन्न मुद्राओं में चित्र मिलते हैं जो अपनी स्वाभाविकता से दर्शकों के मन को मोहित कर लेते हैं।

(3) सौन्दर्य बढ़ाने के लिए बनाए गए चित्र—इन चित्रों में पशु पक्षियों, वृक्षों, लताओं, यक्षों, गन्धर्वों, पशुओं आदि के चित्र आते हैं।

अजन्ता के यह चित्र जीवन की विभिन्न दशाओं का चित्रण करते हैं। एक विद्वान के अनुसार इन चित्रों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई नाटक देखा जा रहा हो।

अजन्ता के कुछ प्रसिद्ध चित्र—अजन्ता के कुछ प्रसिद्ध चित्र निम्न हैं :—

मरणासन्न राजकुमारी का चित्र—इस चित्र में राज कुमारी को मृत्यु शैय्या पर दिखाया गया है। मृत्यु नेत्र वन्द करना चाहती है, उसके सम्बन्धी उसके चारों ओर खड़े हैं। राजकुमारी कातर नेत्रों से उनकी ओर देख रही है। चित्र को देखते ही कला में निर्वेद की भावना घर कर लेती है। मृत्यु का शोकाकुल दृश्य देखते ही वनता है।

(2) महात्मा बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण—सत्रहवीं गुफा का यह चित्र बड़ा ही स्वाभाविक है। गौतम शान्त भाव से गृह त्याग कर रहे हैं, यशोधरा और राहुल सोये हुए हैं। गौतम के चेहरे पर उद्वेग नहीं है। सिस्टर निवेदिता ने इस चित्र की प्रशंसा करते हुए इसे अद्वितीय कल्पना का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बताया है।

(3) राजा तथा स्वर्ण हंस का चित्र—सत्रहवीं गुफा में एक राजा एक स्वर्ण हंस से बातें कर रहा है। इस चित्र की प्रशंसा करते हुए सिस्टर निवेदिता ने इसे विश्व का सुन्दर चित्र बताया है।

(4) माता और पुत्र का चित्र—गुफा नं० 17 में माता और पुत्र का चित्र बड़ा मनमोहक है। माता महात्मा बुद्ध को भिक्षा दे रही है। बालक के हाथ में एक तथा माता के हाथ में अनेक कंकड़ हैं। माता ने एक महीन वस्त्र पहन रखा है तथा बालक नंगा है। सादगी तथा निर्धनता का यह मूर्तिमान रूप है।

(5) राजकीय जुलूस का चित्र—इस चित्र में अनेक स्त्री पुरुष सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण धारण किये चल रहे हैं। कुछ पुरुषों के सिर पर छाता है तथा कुछ बाजा लिए हैं। कुछ स्त्रियां फूलों की माला पहने हुए हैं।

मूल्यांकन—अजन्ता की चित्रकला की अनेक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है। एक विद्वान ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि यहाँ के चित्र चित्रकला की चरमसीमा की ओर संकेत करते हैं। "अजन्ता के चित्रों में मैत्री, करुणा, प्रेम, क्रोध, हर्ष, लज्जा, उत्साह, चिन्ता, ग्रहण आदि सभी भाव, पद्मपाणि और अवलोकितेश्वर, प्रशांत तपस्वी और देवोपम राजपरिवार से लेकर क्रूर व्याध, निर्दय वधिक, साधु वेशधारी धूर्त मनुष्य, वनिता आदि सभी तरह के मानव भेद, समाधिमग्न बुद्ध से लेकर प्रणय क्रीड़ा में रत दम्पति और शृङ्गार में लगी नारियों तक सकल मानव व्यापार अंकित हैं।" इस चित्रकला की जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है।

प्रश्न 18—मुगल वास्तुकला की विशेषतायें क्या हैं ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

मुगलों के काल में वास्तुकला की विशेष उन्नति हुई। अकबर को इमारतें बनवाने का बहुत शौक था। जहांगीर के समय में मुगल वास्तुकला अपनी उन्नति की चरम शिखर पर पहुँच गई थी। परन्तु औरंगजेब के समय से उसकी अवनति प्रारम्भ हुई। यहाँ हम विभिन्न मुगल सम्राटों के समय में हुई वास्तुकला की उन्नति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) बाबर और हुमायूँ—मुगल सम्राटों को भवन आदि बनवाने का विशेष शौक था। उनके युग में 'जौनपुरी', 'गाजीपुरी' और गुजराती शैलियों का पर्याप्त विकास हुआ। बाबर ने आगरा और सीकरी में अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण करवाया था। हुमायूँ के द्वारा निर्मित हिसार जिले में 'फतेहाबाद की मस्जिद' दर्शनीय है। बाबर और हुमायूँ के काल की वास्तुकला में ईरानी शैली के दर्शन होते हैं।

(2) अकबर—अकबर के काल से मुगल वास्तु कला के महत्वपूर्ण युग का प्रारम्भ हुआ। अकबर को भवन बनवाने का विशेष शौक था। अबुल फज़ल ने उसके विषय में लिखा है, "सम्राट शानदार इमारतों के निर्माण की योजना बनाता है तथा अपने मस्तिष्क तथा हृदय की कल्पना को पत्थर तथा मिट्टी की पोशाक पहनाता है।" अकबर के बनवाये हुये भवनों में फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा, दीवाने खास, और जोधाबाई का महल उल्लेखनीय हैं। आगरा, दिल्ली, सिकन्दरबाद, मथुरा और ग्वालियर में भी अकबर ने अनेक भवन बनवाये। अकबर के युग की वास्तुकला में हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का सम्मिश्रण है। फतेहपुर सीकरी की अधिकांश इमारतें इसी शैली में बनवाई गयी थीं। उसका बनवाया हुआ इलाहाबाद का किला अत्यन्त प्रसिद्ध है और उसकी शैली निश्चित रूप से हिन्दू शैली है। उसके खम्भे ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानों हिन्दुओं के मन्दिरों के खम्भे हों।

(3) जहाँगीर—जहाँगीर भी भवन-निर्माण कला का प्रेमी था। उसने 'उत्माद-उद्दौला' तथा 'अकबर का मकबरा' जैसी सुन्दर इमारतों का निर्माण करवाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) **शाहजहाँ**—मुगल सम्राटों में शाहजहाँ काल वास्तु कला की चरमोन्नति का काल था। उस युग के विषय में एक समकालीन इतिहासकार ने लिखा है, "इस समय सुन्दर वस्तुएँ पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थीं। शाहजहाँ के युग की सबसे सुन्दर इमारत ताजमहल है जो विश्व के सात आश्चर्यों में से एक है। विभिन्न विद्वानों ने इसे 'संगमरमर का स्वप्न' 'और प्रकृति सुन्दरी के गाल पर उभरा हुआ अश्रु' के नाम से पुकारा है। ताजमहल के अतिरिक्त उसके बनवाये हुये 'मोती-मस्जिद' 'दीवाने-आम' 'दीवान-ए-खास' आदि भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं 'दीवान-ए-खास' के विषय एक कलाकार ने लिखा है, "यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है।" शाहजहाँ के युग की वास्तुकला की जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है।

(5) **औरंगजेब और स्थापत्य कला की अवनति**—औरंगजेब के युग में अन्य कलाओं की भाँति ही वास्तुकला का भी ह्रास होने लगा। कला को राजकीय आश्रय न मिला और अनेक शिल्पी बेकार होने लगे। उसके युग में जिन भवनों का निर्माण हुआ वे निम्नकोटि के हैं।

मुगलिया वास्तुकला की अपनी विशेषतायें हैं। इस काल की इमारतों में हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य शैली का समन्वय दिखलाई पड़ता है। यह शैली अपने ढंग की निराली है। मुगल काल में बने हुये भवन आज भी भारत के मस्तक को विदेशों में ऊँचा उठाये हुये हैं। शाहजहाँ का बनवाया हुआ 'ताजमहल' संसार के आश्चर्यों में से एक है।

प्रश्न 19—मुगल चित्रकला के विषय में आप क्या जानते हैं?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

वास्तुकला की भाँति ही चित्रकला को मुगलों ने विशेष प्रोत्साहन दिया और इसके फलस्वरूप चित्रकला की विशेष उन्नति हुई। मुगलकाल की चित्रकला का अपना अलग महत्व है।

बाबर और हुमायूँ—प्रथम मुगल सम्राट बाबर ने ईरान और पश्चिमी एशिया के अनेक चित्रकार बुलवाये थे। उसके युग की चित्रकला का नमूना 'बाबर-नामा' के एक फारसी अनुवाद में आज भी देखने को मिलता है। बिजहाद उसके काल का प्रसिद्ध चित्रकार था। हुमायूँ के काल में चित्रकारों में मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस्समद उल्लेखनीय हैं। बाद में हुमायूँ ने इन दोनों कलाकारों से 'दास्तान-ए-अमीर-हमजा' नामक फारसी ग्रन्थ को चित्रित करवाया।

अकबर के समय में चित्रकार—अकबर ने कहा था, "बहुत से लोग चित्रों से घृणा करते हैं। परन्तु मैं ऐसे लोगों को नापसन्द करता हूँ।" उसे मीर सैयद अली और अब्दुस्समद से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त हुई थी और गसये दरबार में अनेक विदेशी और देशी चित्रकार इकट्ठा थे अबुल फजल ने लिखा है कि उसके दरबार में 100 उच्च-कोटि के चित्रकार थे। 1559 ई० से 1585 ई० तक फतेहपुर सीकरी के अलंकरण के हेतु उसने अनेक चित्रकारों को नियुक्त किया था और उनका मुखिया अब्दुस्समद था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर के काल के चित्रकारों में मीर सैयद अली, अब्दुस्समद, जमशेद, फर्रुखवेग, वसावन, सांवलदास, ताराचन्द, लालकेसु, मुकुन्द, हरिवंश, जगन्नाथ आदि उल्लेखनीय हैं। ये चित्रकार मानव कृतियों को वनाने, पुस्तकों को चित्रित करने और पशुओं के चित्र वनाने आदि सभी क्षेत्रों में निपुण थे। अकबर ने 'चंगेजनामा,' 'जाफरनामा', कालियादमन', 'रामायण,' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों को चित्रित करने के लिये अनेक कलाकारों को नियुक्त किया। अपने धार्मिक सिद्धान्तों के फलस्वरूप मुसलमान धार्मिक चित्र नहीं वनाते थे परन्तु अकवर धार्मिक विषयों की ओर भी झुकने लगा था। अकबर के प्रारम्भिक दिनों में हमें हिन्दू, ईरानी, चीनी तत्वों का सम्मिश्रण मुगल चित्रकला में दिखलाई पड़ता है परन्तु शनैः शनैः विदेशी प्रभाव समाप्त हो गया और भारतीय तत्वों की प्रधानता होती गई।

जहाँगीर के समय में चित्रकला—जहाँगीर के समय में चित्रकला अपने गौरव के चरम शिखर पर पहुँच गई। जहाँगीर चित्र कला का विशेष पारखी था। वह चित्र को देखते ही चित्रकार का नाम वता सकता था। उसके समय के प्रमुख चित्रकार आगा रजा, अब्दुलहसन, मुराद-नादिर, विशनदास, केशव, मनोहर, माधव आदि थे। उसके समय में मुगल चित्रकला पर ईरानी प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता और ऐसी नई शैली दिखलाई पड़ती है जिसका झुकाव भारतीय परम्पराओं की ओर अधिक है। समस्त विदेशी तत्व उस शैली में आत्मसात हो गये हैं। जहाँगीर के समय में अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण हुआ। प्राकृतिक चित्रों का अंकन अत्यन्त स्वाभाविक यथार्थरूप में हुआ है। आखेट, युद्ध चित्रण और मानव चित्र सभी दृष्टियों से यह काल उन्नतिशील है।

शाहजहाँ और औरंगजेब काल में चित्रकला—जहाँगीर की मृत्यु के साथ ही मुगल चित्रकला की आत्मा विलीन हो गयी। शाहजहाँ को चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला से अधिक प्रेम था और उसने चित्रकारों को प्रोत्साहन नहीं दिया। कुछ राजाओं, रईसों ने चित्रकारों को अवश्य प्रश्रय दिया परन्तु चित्रकला लड़खड़ाने लगी। चित्रकला को अन्तिम धक्का लगाने का कार्य औरंगजेब ने पूरा किया। वह चित्रकला का विरोधी था। उसने वीजापुर के विशाल महल और सिकन्दरा पर बने हुये चित्रों को नष्ट कर दिया। मुगल दरवार चित्रकारों से शून्य हो गया और चित्रकार वङ्गाल, हैदरावाद, अवध आदि की राजधानियों में चले गये। परन्तु वहाँ के चित्रकारों द्वारा वनाई गई कृतियाँ अकबर और जहाँगीर के समय में वनाई गई कृतियों की अपेक्षा निम्न-कोटि की हैं।

मुगल चित्र कला की विशेषतायें—मुगल चित्रकला की कुछ अपनी विशेषतायें हैं। उसमें चित्र विवध प्रकार के वने हैं। चित्रों में प्रसिद्ध ग्रन्थों को चित्रित किया गया है। साधु-सन्तों के चित्र वनाये गये। आखेट, युद्ध, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल आदि को भी चित्रित किया गया। मुगल चित्रकला में स्वाभाविकता, सजीवता के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन होते हैं। रेखाओं की गोलाई एवं कोमलता देखते ही बनती है। चित्रों में अधिकतर लाल, पीले, नीले, हरे, सुनहरे और रुपहले रंगों का प्रयोग हुआ है। मुगल चित्रकला आध्यात्मिक नहीं है और न ही वह भारतीय जन-जीवन का ही अङ्कन करती है। उस युग के चित्रों से तत्कालीन जन-जीवन का ज्ञान नहीं होता। यह चित्रकला कायदे कानून में इतनी जकड़ी हुई है कि उसमें कृत्रिमता और दृढ़ता उत्पन्न होने लग गई है। इस चित्रकला में देशी और विदेशी तत्वों का समन्वय है। आर० सी० मजूमदार ने लिखा है, "स्थापत्य की भाँति ही मुगल कालीन चित्रकला में भारतीय और विदेशी तत्वों का सम्मिश्रण है" परन्तु बाद के चित्रों में विदेशी तत्वों की अपेक्षा भारतीय तत्वों का आधिक्य दिखलाई पड़ता है।

अध्याय ५

भारतीय साहित्य

INDIAN LITERATURE

प्रश्न 20—वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
वेदों के विषय में आप क्या जानते हैं? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

'वेद' शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है 'जानना'। 'वेद' शब्द का वास्तविक अर्थ है 'ज्ञान'। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने यह ज्ञान ऋषियों को दिया। ऋषि वेदों के द्रष्टा थे, रचयिता नहीं और इसी कारण वेदों को नित्य और अपौरुषेय कहा जाता है। प्राचीन युग में वेदों की शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। वेदों का ज्ञान प्राचीन ऋषियों को श्रवण परम्परा से हुआ और इसी कारण उन्हें 'श्रुति' भी कहा जाता है। वैदिक मन्त्रों का संकलन वेदव्यास ने किया।

समस्त वैदिक साहित्य को चार भागों में बांटा जा सकता है—

(1) संहिता—इसका अर्थ है 'संग्रह' या 'समुदाय'। यही वैदिक साहित्य का प्रचीनतम भाग है। संहिताएं 4 हैं—ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद। सामान्य जनता इन संहिताओं को ही वेद के नाम से पुकारती है।

(2) ब्राह्मण ग्रन्थ—इन ग्रन्थों में मुख्य रूप से कर्मकाण्ड का विवेचन हुआ है। सभी वेदों का ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होता है। ऋग्वेद का प्रमुख ब्राह्मण एतरेय ब्राह्मण है। यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामवेद के पंचविंश और ताण्ड्य ब्राह्मण एवं अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

(3) आरण्यक—इनकी रचना अरण्यों (वनों) में रहने वाले ऋषियों द्वारा की गई। वनों में रचना किये जाने के कारण इनका नाम 'आरण्यक' पड़ा। इन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरण्यक ग्रन्थों में दार्शनिक विवेचन हुआ है। प्रमुख 'आरण्यक' हैं, ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि आरण्यक, यजुर्वेद के तैत्तिरीय और बृहदारण्यक और सामवेद का जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण जो वास्तव में एक आरण्यक ही है।

(4) उपनिषद्—उपनिषदों में सम्पूर्ण वैदिक काल के दार्शनिक विचारों का संग्रह है। इनकी चर्चा हमने इस अध्याय के प्रश्न (2) के अन्तर्गत विस्तार से की है।

हमने पहले ही इस बात का उल्लेख किया है कि वेद अनादि और अपौरुषेय हैं परन्तु फिर भी कुछ विद्वानों ने वेदों के रचनाकाल की तिथि निर्धारित करने का प्रयास किया है। मैक्समूलर ने ऋग्वेद संहिता का रचनाकाल 1200-1000 ई० पू० माना है। बाल गंगाधर तिलक और जर्मन विद्वान जेकोबी इसका रचना काल 4500 ई० पू० मानते हैं। विण्टरनिड्स इसे 2500 ई० पू० के लगभग का मानते हैं। विन्टरनिड्स का कथन ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। बोगसकोई का अभिलेख जिसका समय 1400 ई० पू० है, में वैदिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार विण्टरनिड्स के कथन की सत्यता प्रतीत होती है परन्तु फिर भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि वेदों की रचना किस समय हुई।

हमने पहले ही इस बात का उल्लेख किया है कि चार संहिताओं को ही साधारण जनता वेद के नाम से पुकारती है। यहाँ हम इन चारों वेदों का उल्लेख संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) ऋग्वेद—ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इसमें 1028 सूत्र हैं जो 10 मण्डलों में विभाजित हैं। ऋग्वेद के केवल 9 मण्डल ही प्राचीन हैं। दसवां निश्चित रूप से बाद की रचना प्रतीत होता है। ऋग्वेद 8 भागों में बंटा हुआ है जिन्हें अष्टक कहते हैं। हर अष्टक में 8 अध्याय हैं। अध्यायों को वर्गों में विभाजित किया गया है। हर वर्ग में 5 मंत्र हैं। ऋग्वेद की शाकल, वाष्कल, अश्वलायन, शाखायन, और माण्डूक्य ये 5 शाखायें थीं परन्तु इनमें से केवल 'शाकल' शाखा ही प्राप्त है। धार्मिक, एतिहासिक एवं काव्य सभी दृष्टियों से ऋग्वेद का विशेष महत्व है। हिन्दू इसे अपना प्राचीनतम धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं और इसे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं। इस ग्रन्थ से वैदिक युग के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है और ऋग्युग के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। काव्य की दृष्टि से यह अनोखा ग्रन्थ है और कालान्तर के कवियों के लिये आदर्श रहा है

(2) यजुर्वेद—'यजु' यज्ञ का नाम है और इस वेद में गद्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। 'यजुर्वेद' का है शाब्दिक अर्थ है 'यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान'। इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का वर्णन किया गया है। 40 अध्यायों में 2000 छंद हैं और कुछ गद्य भी। यजुर्वेद के 2 वर्ग हैं—(1) कृष्ण अजुर्वेद और (2) शुक्ल यजुर्वेद में मंत्र और ब्राह्मण भागों का सम्मिश्रण है परन्तु शुक्ल यजुर्वेद में केवल मंत्र है। कुछ मंत्र गद्य में हैं और कुछ पद्य में। कृष्ण यजुर्वेद की 5 शाखायें हैं—काठक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपिष्ठल, मैत्रायणी और तैत्तरीय कृष्ण यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद को 'वाजसनेयी संहिता' के नाम से भी पुकारा जाता है।

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं यजुर्वेद में वैदिक यज्ञों के विधि-विधान का वर्णन ही है, सांस्कृतिक और काव्यात्मक दृष्टि से उसका वह महत्व नहीं है जो कि ऋग्वेद का।

(3) सामवेद—"साम" का अर्थ 'गान' होता है। अतएव सामवेद में देवताओं की स्तुति के गान हैं। इसमें 1549 गेय मंत्र हैं जिन्हें 'साम' कहा जाता है। 75 मन्त्रों को छोड़ कर शेष मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। इनकी गान पद्धति निश्चित है। इनके कहने की एक विशेष विधि है और इस विधि के गाता को 'उद्‌गाता' कहा जाता था। भारतीय संगीत की उत्पत्ति सामवेद से ही मानी जाती है। सामवेद के 2 भाग हैं—पूर्व चित के हेतु 'आग्णेयः अरण्य गान' और उत्तर चित के लिये 'ऊह गान' और 'ऊह्य गान' प्रयुक्त होते हैं। सामवेद की 3 शाखायें हैं। कौथुमीय, जैमनीय और राणायनीय।

(4) अथर्ववेद—अथर्ववेद में 20 गान, 731 सूत्र और 5838 मंत्र हैं। इनमें से 1100 मंत्र ऋवेद से लिये गये हैं। अथर्ववेद के विषय भिन्न हैं। कुछ विद्वान इसे अंध-विश्वास, जादू-टोने के भण्डार की संज्ञा देते हैं। वे अथर्ववेद में शत्रु दमन, औषधि प्रयोग, रोग निवारण, जंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत आदि का वर्णन मानते हैं। दार्शनिक तत्व चिन्तन, प्राण विद्या, ब्रह्मचर्य, बनस्पति विज्ञान आदि का भी स्रोत यही ग्रंथ है। इसमें विष और सर्पदंश के प्रभाव को दूर करने एवं राष्ट्र एवं पृथ्वी सम्बधी विचार भी दिये गये हैं। अथर्ववेद की दो शाखायें हैं, 'शौनक' और 'पिप्पलाद'।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों में ज्ञान विज्ञान का अपार भण्डार निहित है। वेदों की अनेक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्तव में इनके विषय में चाहे जो कुछ कहा जाय, इनके महत्व का उल्लेख शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता।

प्रश्न (2) उपनिषद् साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

'उपनिषद' का अर्थ है 'गुरु के समीप बैठकर पाया गया ज्ञान।' वैदिक साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् गुरु के चरणों में बैठ कर विशिष्ट शिष्य ही इनका अध्ययन करते थे। उपनिषदों की रचना वैदिक काल के अन्तर्गत हुई और वैदिक शिक्षा के अन्तर्गत यह सब से बाद में पढ़ाए जाते थे। वेदों अन्तिम का भाग होने के कारण यह वेदान्त भी कहलाते थे और कालान्तर का वेदान्त दर्शन इन्हीं से विकसित हुआ है। उपनिषद सम्पूर्ण वैदिक काल के चिन्तन का फल है और इनमें वैदिक युग का दार्शनिक ज्ञान सार रूप में एकत्र किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है और उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों की संख्या अनगिनत है। इनमें से अनेक तो बहुत बाद के एवं साम्प्रदायिक भी हैं। प्राचीन उपनिषदों का मूल उपनिषद या मुख्य उपनिषद कहलाता है। इन मूल उपनिषदों की संख्या 11 बतलाई जाती है जिनका उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है :—

(1) ईशावास्य उपनिषद्—यजुर्वेद का यह 40वाँ अध्याय है।

(2) केन उपनिषद्—यह समावेद का उपनिषद है।

(3) कठ उपनिषद्—यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है और कठ शाखा का उपनिषद है। इसमें नचिकेता के मृत्यु के पास जाने और उससे तीन वर पाने की मनोरंजक कथा है।

(4) प्रश्न उपनिषद्—यह आधा गद्य एवं आधा पद्य में है एवं अथर्ववेद से सम्बद्ध है।

(5) माण्ड्क्य उपनिषद्—यह अथर्ववेद की माण्ड्क्य शाखा का उपनिषद है।

(6) मुण्डक उपनिषद्—यह भी आधा गद्य और आधा पद्य में है और अथर्ववेद की मुण्डक शाखा से सम्बद्ध है।

(7) ऐतरेय उपनिषद्—यह ऋग्वेद की ऐतरेय शाखा का उपनिषद ऐतरेय आरण्यक का अन्तिम भाग है।

(8) तैत्तरीय उपनिषद्—यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा से सम्बद्ध है और इसी नाम के आरण्यक का अन्तिम भाग है।

(9) छान्दोग्य उपनिषद्—यह सामवेद की उद्गीथ-विद्या का वर्णन करता है। ओंकार की इतनी सुन्दर विवेचना दूसरी जगह दुर्लभ है।

(10) बृहदारण्यक उपनिषद्—यह शुक्ल यजुर्वेद के बृहदारण्यक का अंतिम भाग है। इसमें अग्निविद्या का विशेष वर्णन हुआ है।

(11) श्वेताश्वतर उपनिषद्—श्वेताश्वतर मुनि ने इसका उपदेश दिया था। यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है।

इनके अतिरिक्त 3 अन्य उपनिषद भी मूल उपनिषदों में माने जाते हैं। ये उपनिषद हैं-(1) मैत्री उपनिषद, (2) महानारायण उपनिषद और (3) कौषीतकि उपनिषद। इन तीनों का वर्ण्य विषय वेदान्त है।

उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्मवाद, आत्मवाद, ब्रह्म एवं आत्मा की एकता, प्राण विद्या, अग्नि विद्या, ओंकार विद्या, आदि का विवेचन किया गया है। ब्रह्म-तत्व का विस्तृत विवेचन इनमें हुआ है। ब्रह्म के 2 रूप हैं—पर और अपर। उपनिषदों में सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों का उल्लेख है। ब्रह्म सब में व्याप्त रहता है और अभौतिक है। अपने भीतर इस अन्तिम तत्व को खोजने के प्रयास में आत्मा का ज्ञान हुआ। आत्मा एक है, वह शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से परे है। उस पर न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कर्म का प्रभाव ही पड़ता है और न वह कर्म ही करता है। ब्रह्म और आत्मा की एकता ही उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। 'तत्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि,' आदि वाक्यों में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। उपनिषदों में जगत को ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना गया है और कहा है कि आत्मा सभी प्रकार के विकारों से रहित है और विद्या से उत्पन्न अहंकार ही मनुष्य के बन्धन का कारण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपनिषदों का मूल विषय दार्शनिक रहा है परन्तु साथ ही अन्य बातों का भी इनमें उल्लेख है। प्रो० रानाडे ने ठीक ही लिखा है: "उपनिषद् हमें एक ऐसी दृष्टि दे सकते हैं जो मानव की दार्शनिक, वैज्ञानिक और धार्मिक माँगों की एक साथ ही पूर्ति कर सकें क्योंकि उनसे हमें प्रत्यक्ष, सहज और रहस्यवादी अनुभूति से प्रतिपादित एक ऐसा दृष्टिकोण मिलता है जिसका कोई भी विज्ञान खण्डन नहीं कर सकता, जो समस्त दर्शन का परम लक्ष्य और समस्त धर्मों का आन्तरिक सत्य है।

प्रश्न 22—रामायण का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' संस्कृत साहित्य का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय महाकाव्य का आदि काव्य है। इसमें एक ओर यदि महाकवि वाल्मीकि की काव्य प्रतिभा का दर्शन हुआ है तो दूसरी ओर सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदर्शों का भी समावेश है। यह ग्रन्थ कालान्तर के अनेक कवियों के लिये प्रेरणास्रोत रहा।

कहा जाता है कि एक मरे हुये क्रौंच पक्षी के जोड़े को देख कर वाल्मीकि के मुख से जो शब्द निकले, वही संसार का पहला लौकिक छंद था। इसके बाद वाल्मीकि को रामायण की रचना की प्रेरणा मिली। यह कहा जाता है कि रामायण की रचना वाल्मीकि ने राम के जीवन काल में ही की थी जो पार्जिटर के अनुसार 1500 ई० पू० है। परन्तु रामायण की परिष्कृत भाषा एवं शैली और अलंकरण को देखते हुये इसे उतना प्राचीन नहीं कहा जा सकता। राम हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मों में मर्यादा पुरुष के रूप में स्वीकार किये गये हैं। अतएव इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रामायण की रचना गौतम बुद्ध से पहले हुई है। याकोबी महोदय ने मूल रामायण की रचना का समय 800-600 ई० पू० माना है। पाणिनि (5वीं शताब्दी ई० पू०) ने रामायण का उल्लेख किया है। महाभारत के वनपर्व में राम की कथा का उल्लेख है। विण्टरनिट्स रामायण पर बौद्ध धर्म का प्रभाव नहीं देखता। 2 श्लोकों में यवनों का नाम देख कर प्रो० वेबर यह मत व्यक्त करते हैं कि रामायण पर यूनानी प्रभाव है परन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता। प्रो० जैकोबी ने दोनों श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रामायण यूनानियों से पहले की रचना है और उसका रचना काल 800-600 ई० पू० के मध्य मानना उचित ही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण के विभिन्न काण्ड एवं संस्करण—आज मूल रामायण उपलब्ध नहीं है। इसका मूल स्वरूप अवश्य ही काफी छोटा रहा होगा। आधुनिक रामायण में 24000 श्लोक प्राप्त होते हैं। इसको 7 काण्डों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार हैं—(1) बाल-काण्ड, (2) अयोध्या काण्ड, (3) अरण्य काण्ड, (4) किष्किन्धा काण्ड, (5) सुन्दर काण्ड और (6) युद्ध काण्ड, और (7) उत्तर काण्ड। आजकल रामायण के 3 मूल संस्करण मिलते हैं—बंगाली, पश्चिमी और दक्षिणी। इन तीनों संस्करणों के पाठ एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। कुछ प्रतियों में सर्ग के सर्ग ऐसे हैं जो दूसरी प्रतियों से नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि रामायण के मूल रूप में काफी परिवर्तन किया गया है।

रामायण का मूल विषय एवं महत्व—जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, रामायण में महापुरुष राम की कथा का चित्रण है। अयोध्या के राजा दशरथ के यहाँ राम का जन्म, उनका वनवास, युद्धों आदि का रामायण में सजीव वर्णन हुआ है। रामायण का महत्व इस बात में है कि इस ग्रन्थ से तत्कालीन समाज की स्थिति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। काव्य की दृष्टि से रामायण एक अत्यन्त उच्च-कोटि का ग्रन्थ है। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, यह कालान्तर के अधिकांश भारतीय साहित्य का आधार रहा है। इसकी रचना सरल, प्रांजल, प्रसाद गुणमय भाषा में हुई है तथा उसमें अलंकारों का समुचित प्रयोग किया गया है। श्लोक छंद का प्रारम्भ रामायण से ही हुआ है। यद्यपि यह वीर काव्य है परन्तु आनन्दवर्धन आदि ने इसका प्रधान रस करुण माना है। समय-समय पर अन्य रसों का भी इसमें वर्णन हुआ है। राम की रावण पर विजय के रूप में सत्य की असत्य पर विजय का उल्लेख किया गया है। इसमें राम को सत्य पुरुष, भरत के भ्रातृ प्रेम, सीता की पवित्रता और पतिव्रत धर्म आदि आदर्शों का सजीव चित्रण है। मुख्य कथा के अतिरिक्त रोहिताश्व, हरिश्चन्द्र, ययाति, नहुष, आदि के नैतिक आदर्शों को व्यक्त करने वाली अन्य कथायें भी हैं।

रामायण का साहित्यक महत्व तो है ही साथ ही यह भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है। यह परवर्ती भारतीयों के लिये विचार-संहिता सिद्ध हुई है। इसके सम्बन्ध में एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि 'यह हमारा गौरवमय इतिहास है, आदि-काव्य है, आदर्शों का अनुकथन है, भारतीय संस्कृति का दमकता दर्पण है और कालिदास,भास, भवभूति, आदि को प्रेरणा देने वाला उपजीव्य काव्य है।" वाल्मीकीय रामायण हमारे सांस्कृतिक गौरव का प्रतिनिधि है।

प्रश्न 23 —महाभारत के विषय में आप क्या जानते हैं? इसके महत्व पर प्रकाश डालिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

महाभारत की रचना और वर्णन विषय का वर्णन कीजिये और उसकी महत्ता पर प्रकाश डालिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत का संक्षिप्त परिचय दीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

महाभारत भारत की उज्जवल-ज्ञान परम्परा का अमर स्तम्भ है। वह भारतीय जीवन की सर्वांगीण ख्याति का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसके रचयिता वेद-व्यास माने जाते हैं जिनका वास्तविक नाम कृष्ण द्वैपायन है। कहा जाता है कि यह महाभारत युद्ध के समकालीन थे और उन्होंने 3 वर्ष के अनवरत परिश्रम से इसकी रचना की थी। व्यास ने महाभारत का आख्यान अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाया। कालान्तर में सौति के द्वारा शौनकादि ऋषियों को यह आख्यान सुनाया गया। इस प्रकार महाभारत के 3 रूपान्तर हुये। व्यास ने जिस ग्रन्थ की रचना की उसका नाम 'जय' था और उसमें कौरव-पाण्डव युद्ध की कथा मात्र ही थी। इसमें 8800 श्लोक थे। वैशम्पायन ने जिस आख्यान की वृद्धि की उसका नाम 'भारत' पड़ा और उसमें श्लोकों की संख्या 24000 हो गई। फिर सौति ने इसे अन्तिम रूप दिया और उसका नाम 'महाभारत' पड़ा। इसको सुनाने वाले उसमें समय-समय पर नये अंश जोड़ते रहे और इसके श्लोकों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई जो अब एक लाख है।

महाभारत का समय—महाभारत की रचना किस समय हुई, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। विण्टरनिड्स ने अनेक प्रामाणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महाभारत का वर्तमान स्वरूप ई० पू० चौथी शताब्दी से चौथी शताब्दी के मध्य किसी समय प्राप्त होता है। कुमारिल भट्ट (700 ई०) इसे एक महान स्मृति ग्रन्थ मानते हैं। सुबन्धु, बाणभट्ट (600-640 ई०) महाभारत के काव्य रूप से परिचित थे। 482 ई० के गुप्तकालीन एक अभिलेख में "शत साहस्र्यां संहितायां" कह कर महाभारत का उल्लेख किया गया है। इन प्रमाणों के आधार पर महाभारत का वर्तमान रूप 400 ई० पू० तक स्थिर हो चुका था। इस प्रकार विद्वानों का अधिकतर वर्ग मूल महाभारत का रचनाकाल 800 ई० पू० से 600 ई० पू० के मध्य मानता है और यह कहता है कि महाभारत का वर्तमान रूप 320 ई० पू० से 50 ई० के मध्य का है।

महाभारत की विषय-सामग्री—महाभारत ग्रन्थ का आधार कौरव-पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। इसमें कौरवों पर पाण्डवों की विजय, पाण्डवों का स्वर्गारोहण, परीक्षित का राज्यारोहण तक का वर्णन है। यह ठीक है कि इसमें मुख्य रूप से कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन किया गया है किन्तु इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य भौतिक जीवन की निस्सारता का ज्ञान कराकर मानव को मोक्ष का मार्ग दिखाना है।

महाभारत भारतीय संस्कृति का महान विश्वकोष है। यह एक महान धर्म ग्रन्थ है। यह आचार-विचार, राजनीति दर्शन और जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। महाभारत में 18 पर्व हैं, जो निम्नलिखित हैं—(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट्, (5) उद्योग, (6) भीष्म, (7) द्रोण, (8) कर्ण,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(9) शल्य, (10) सौप्तिक, (11) स्त्री, (12) शान्ति, (13) अनुशासन, (14) अश्वमेध, (15) आश्रमवासी, (16) मौसल, (17) महाप्रस्थानिक, और (18) स्वर्गारोहण।

इसमें कौरवों और पाण्डवों के आख्यानों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण आख्यानों का भी उल्लेख हुआ है जो मुख्य हैं—(1) नलोपाख्यान, (2) मत्स्योपाख्यान, (3) रामोपख्यान, (4) सावित्री उपाख्याव, (5) शकुन्तलोपाख्यान, (6) शिवोपाख्यान। महाभारत को एक राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक सभी प्रकार का ग्रन्थ माना जाता है। इस में काव्य सौष्ठव के स्थान पर उपाख्यानों, इतिहास एवं नीति पर अधिक वल दिया गया है।

महाभारत का महत्व—जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, महाभारत भारतीय संस्कृति का विश्व-कोष है। आदि पर्व में इसे 'मोक्ष' भी कहा गया है। इस ग्रन्थ का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से महत्व है। राजनीति के विभिन्न दांव-पेंचों का उल्लेख इसमें हुआ है। तत्कालीन समाज की दशा को जानने का यह एक महत्वपूर्ण साधन है। धार्मिक दृष्टि से इसका उद्देश्य मोक्ष की ओर अग्रसर करना है। भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर महाभारत द्वारा समुचित प्रकाश पड़ता है। साहित्यिक दृष्टि से भी महाभारत का अपना अलग महत्व है। साहित्य को प्रायः सभी शैलियों-काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य कथा, आख्यायिका आदि का महाभारत में दर्शन होता है। यह ठीक है कि उसका राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कतिक दृष्टि से अपना महत्व है परन्तु उसकी कलात्मकता और रसात्मकता में कहीं कमी नहीं आई है। महाभारत का सबसे अधिक महत्व इसलिये है कि दर्शन-शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'गीता' महाभारत का ही एक अंग है। सत्य तो यह है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसके सम्बन्ध में महाभारत प्रकाश न डालता हो। स्वय महाभारत के शब्दों में—

'धर्मे ह्यर्थे च काम च मोक्षे च भरतर्षम।
यदिहस्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥'

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से जो कुछ इस ग्रन्थ में है, वह दूसरी जगह है, जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है,। इस से स्पष्ट है कि कालान्तर में जितने भी ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें से बहुतांश के लेखकों ने इस ग्रन्थ मे प्रेरणा प्राप्त की है। ज्ञान-विज्ञान का जितना वृहद् कोष महाभारत है, कदाचित अन्यत्र इतना वृहद् कोष देखने को नहीं मिलता। सांस्कृतिक दृष्टि से जो महत्व इस ग्रन्थ को प्रदान किया जाता है, वह अन्य किसी भारतीय ग्रन्थ को नहीं प्रदान किया जाता।

प्रश्न 24—गीता का परिचय देते हुये उसके प्रतिपाद्य विषय का वर्णन कीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

गीता का केन्द्रीय सदेश क्या है? उसने क्यों अनेक विदेशियों को प्रेरणा दी? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है । यह भारतीय साहित्य की अमर निधि है । धार्मिक और दार्शनिक साहित्य में गीता का महत्व उपनिषदों के बाद ही है । 18 सर्गों का यह काव्य महाभारत में उस जगह अलग से जोड़ दिया गया । प्रतीत होता है जब कौरवों और पाण्डवों की सेनायें युद्ध क्षेत्र में एक दूसरे के आमने-सामने डटी हुई थीं, उसी समय अर्जुन में सहसा निराशा की भावना जागृत होती है, और वह युद्ध से इन्कार करते हैं । उनके मन में यह विचार आता है कि अपने भाई बन्धुओं को मार कर राज्य करने से क्या लाभ है ? इसी समय महा-पुरुष श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं । यही उपदेश गीता का मूल विषय है । चूंकि गीता महाभारत के भीष्म पर्व का ही एक भाग है अतएव उसका रचनाकार वेदव्यास को ही माना जाना चाहिये । परन्तु अधिकतर विद्वान उसे स्वीकार नहीं करते और उनका कहना समीचीन हीं प्रतीत होता है कि गीता की रचना महाभारत के बाद हुई है । गार्बे गीता को 200 ई० पू० के लगभग का मानता है । डा० राधाकृष्णन उसे 500 ई० पू० की रचना बतलाते हैं ।

गीता का मूल विषय—18 अध्यायों के इस ग्रन्थ में सभी उपनिषदों का सार रख दिया गया है । यह कहा गया है कि 'सभी उपनिषद गाय हैं, दुहनेवाले श्रीकृष्ण हैं । अर्जुन बछड़े हैं । विद्वान दुग्धपायी, दुग्ध महान गीतामृत है ।" गीता के विभिन्न टीकाकार उसे अपने विरोधी सिद्धान्त का प्रमाण मानते हैं परन्तु गीता में किसी वाद की स्थापना न करके सभी सिद्धान्तों का समन्वय किया गया है ।

गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान को एक दूसरे का पूरक बताया गया है और उनमें से किसी एक का आश्रय लेकर व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है । गीता में कर्म को प्रधानता दी गई है परन्तु साथ ही फल के त्याग का भी उल्लेख है । निः-स्वार्थ होकर कर्म करना ही गीता का सन्देश है । गीता में लिखा है ज्ञान और कर्म में कर्म ही श्रेष्ठ है परन्तु सर्वश्रेष्ठ योग है । भक्त ईश्वर को सब कुछ अर्पित करके अपने पापों से मुक्त हो जाता है । गीता का परम सिद्धान्त लोक-संग्रह है । प्रो० हिरियाना ने लिखा है, हमारा युग आत्मदान नहीं बल्कि आत्मगौरव का युग है । लोग संन्यासी बनने के लिए अपना कर्तव्य छोड़ने वाले नहीं हैं जैसा कि अर्जुन कहना चाहता था । खतरा दूसरी ओर से है । अधिकारों का दावा और उपयोग करने की उत्सुकता में हम अपने कर्तव्यों की अवहेलना कर सकते हैं । अतः गीता के उपदेशों की आवश्य-कता सदा की तरह अत्यधिक है । कालान्तर में उसका मूल्य घटा नहीं है और यही उसकी महानता का चिन्ह है ।"

गीता का मुख्य सिद्धान्त निष्काम कर्मयोग है । निष्काम कर्मयोग मानव की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रकृति के अनुकूल है । अरविन्द के शब्दों में "गीता हमें कर्मों को कामना रहित होकर करना नहीं सिखाती, बल्कि सर्व धर्मों को छोड़ कर दैवी-जीवन का अनुसरण करना, एक मात्र परमात्मा में शरण लेना सिखाती है और एक बुद्ध, एक रामकृष्ण और एक विवेकानन्द का दैवी कर्म उसके उपदेश से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण सामंजस्य में है।" गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये स्वयं कहा है:—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"

गीता का महत्व—गीता प्राचीन काल से भारतीय जनता के लिये आदर्श रही है। निष्काम कर्म का जो सन्देश उसने प्रदान किया है वह भारतीयों के जीवन का आधार बन गया है। इस ग्रन्थ में वेद, उपनिषद, सांख्य-योग और भागवत सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के परस्पर विरोधों को मिटाकर एक सूत्र में पिरो दिया गया है। जहाँ गीता का महत्व दार्शनिक दृष्टि से है वहाँ इसका दैनिक जीवन के लिये भी कम महत्व नहीं है। उसमें व्यवहारिक जीवन की समस्याओं का भी हल है। कर्तव्य मानव का सबसे बड़ा धर्म है, यह सन्देश देकर गीता के रचयिता ने आगे आने वाली संतसितयों की महान सेवा की है। गीता पर शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभ, तिलक, अरविन्द और गांधी आदि ने अपने-अपने ढंग से भाष्य लिखे हैं और इनका अपना-अपना अलग महत्व है। गीता भारतीयों के लिये ही आदर्श नहीं रही है बल्कि वह विदेशियों के लिये भी एक महान ग्रन्थ के रूप में पूजा जाता रहा है। अनेक पश्चात्य विद्वानों ने गीता की टीकायें लिखी हैं। पश्चात्य जगत, जो भौतिक जीवन की दौड़ में निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है, के लिये गीता का कर्म सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। अनेक विदेशियों ने गीता से प्रेरणा प्राप्त की है। जीवन की जटिलताओं में मानसिक शान्ति प्रदान करने वाला यह ग्रन्थ विदेशियों के लिये भी एक आदर्श रहा है।

प्रश्न 25—कालिदास और उनके ग्रन्थों के विषय में आप क्या जानते हैं? कालिदास के योगदान का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

कालिदास संस्कृत साहित्याकाश के सबसे अधिक जगमगाते हुये सितारे हैं। वह भारतीय साहित्य के रत्नकोष के सर्वोज्ज्वल हीरक हैं। देश-विदेश के साहित्यकारों के मध्य कालिदास को जो गौरव प्राप्त हुआ है वह बहुत ही थोड़े कवियों को प्राप्त हुआ है। उन्हें कवि कुल गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है।

कालिदास का समय—कालिदास के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। इतना तो निश्चित है कि उनका सम्बन्ध विक्रमादित्य नामक राजा से था। यह विक्रमादित्य कौन था, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद रहा है। 57 ई० पू० में विक्रमादित्य नाम का एक राजा हुआ है जिसने विक्रम संवत चलाया। कुछ विद्वान कहते हैं कि कालिदास इसी के नवरत्नों में से थे। हार्नली का मत है कि यशोधर्मन ने हूण राजाओं को पराजित करके विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और कालिदास यशोधर्मन के समय में ही हुआ। इस प्रकार वह कालिदास को 6ठी शताब्दी का मानता है। विद्वानों का अधिकतर वर्ग कालिदास को गुप्तकालीन मानता है। इन विद्वानों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कीथ, डा० भण्डारकर, पंडित राम अवतार शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हमारे विचार से भी कालिदास को गुप्तकालीन ही माना जाना चाहिये।

कालिदास के विषय में किंवदन्ती है कि कालिदास पहले तो मूर्ख थे। वह एक समय जिस डाल पर बैठ थे, उसी को काट रहे थे। वाराणसी की राजकुमारी विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ में पराजित कुछ विद्वानों ने मिल कर राजकुमारी का विवाह कालिदास से धोखे से करा दिया। जब विद्योत्तमा को कालिदास की मूर्खता का पता चला तो उसने उसे बहुत धिक्कारा। इससे दुखी होकर कालिदास ने काली की तपस्या करके विद्वत्ता प्राप्त की। तपस्या से लौटने पर उनकी पत्नी ने पूछा,—"क्या वाणी में कुछ सुधार हुआ।" उत्तर में कालिदास ने कुमार संभव, मेघदूत, और रघुवंश ग्रन्थ सुनाया।

कालिदास की कृतियाँ—कालिदास ने अनेक ग्रन्थों की रचना की और उनके नाम से अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। परन्तु उनमें प्रमुख ग्रन्थ 7 ही माने जाते हैं— कुमारसंभवम्, रघुवंश महाकाव्य, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, और अभिज्ञान-शाकुन्तलम् नाटक तथा ऋतुसहार और मेघदूत खंडकाव्य। कदाचित कालिदास की प्रसिद्धि के कारण वाद के कुछ कवियों ने अपनी रचनायें कालिदास के नाम से प्रकाशित कर दीं।

'ऋतुसंहार' कालिदास की सर्वप्रथम रचना है। उसमें ग्रीष्म से प्रारम्भ करके वसन्त तक की 6 ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन है। 'मेघदूत' विरही यक्ष मेघ के माध्यम से अपनी पत्नी को भेजा गया सन्देश है। इसके दो भाग हैं: पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। करुण रस का जो परिपाक इस ग्रन्थ में है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यह प्रेम का अमर काव्य है। 'मालविकाग्निमित्रम्' कालिदास का पहला नाटक है जिसमें शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र के मालविका के साथ प्रेम का चित्रण है। 'विक्रमोर्वशीयम्' पुरूरवा और उर्वशी के वैदिक कथानक पर आधारित है। उसमें राजा विक्रम और उर्वशी नाम की अप्सरा का प्रेम चित्रित है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' कालिदास का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। यदि इसे विश्व साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाय तो अनुचित न होगा। 7 अंकों के इस नाटक की रचना महाभारत के प्रसिद्ध आख्यान पर आधारित है जिसमें महाराजा दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम वृतान्त है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कर्म और धर्म, वासना और कर्तव्य जैसी विरोधी प्रवृत्तियों के परस्पर संघर्ष के समन्वय का सुन्दर आदर्श उपस्थित किया गया है। इसमें प्रेम अथवा करुणा का अपूर्व सम्मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

'कुमारसंभव' और 'रघुवंश' उनके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कुमारसम्भवम् के 17 सर्गों में शिवपार्वती का विवाह, कार्तिकेय का जन्म, तारकासुर के वध की कथा वर्णित है। कुमारसम्भवम् में प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है और अपने प्रकृति चित्रण के लिये कुमारसम्मवम् विशेष रूप से प्रसिद्ध है। 'रघुवंश' सूर्यवंशी राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघु की दिग्विजय का काव्य है। 19 सर्गों के इस महाकाव्य में रघुवंश के दिलीप, रघु, अज, राम से लेकर अग्निमित्र तक का वर्णन है। यह ग्रन्थ रामायण से प्रभावित प्रतीत होता है परन्तु शैली में कदाचित यह रामायण से बढ़कर है। इसमें कवि ने राजत्व का चित्रण किया है। यह संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

कालिदास का महत्व—कालिदास के महत्व का उल्लेख शब्दों में नहीं किया जा सकता। संस्कृत साहित्य को कालिदास की जो देन है उसका अंकन करना आसान नहीं है। कालिदास प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। प्रेम और सौन्दर्य की जो अभिव्यंजना उनके काव्य में हुई है वह विश्व के अन्य किसी कवि के काव्य में दिखलाई नहीं पड़ती। वह रस, ध्वनि, पदलालित्य और उपमा में अद्वतीय हैं। वह सरल और प्रसादपूर्ण भाषा में भी निगूढ़तम भावों के अंकन में समर्थ हैं। मानव चरित्र की दुर्बलताओं को स्वीकार करते हुये भी मानव मन की महत्ता और शक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया है। मानवता के रहस्य का उद्घाटन करने वाले वे एक महानतम कलाकार हैं। शृंगार और करुण रस की जो अनुपम छटा और उपमा अलंकार की जो अद्वितीय आभा कालिदास में पाई जाती है उसका गुण-गान आज के कलाकार भी खुले हृदय से करते हैं।

प्रश्न 26—बौद्ध त्रिपिटक के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त परिचय दीजिए।

त्रिपिटकों का अर्थ—बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन जिन ग्रन्थों में हुआ है उन्हें 'त्रिपिटक' के नाम से पुकारा जाता है। चूँकि यह ग्रन्थ पिटारी में रखे जाते थे अतएव इनके नाम में 'पिटक' आया। इनकी संख्या तीन है, इस कारण 'पिटक' के पूर्व 'त्रि' जोड़ दिया गया और इस प्रकार 'त्रिपिटक' नाम पड़ा।

त्रिपिटकों का परिचय—त्रिपिटकों की संख्या तीन है—(1) विनय पिटक, (2) सुत्त पिटक, और (3) अभिधम्म पिटक। इन त्रिपिटकों को सबसे पहले लंका के राजा वट्टगामणि द्वारा लिपिबद्ध कराया गया। 'विनय पिटक' में 4 ग्रन्थ आते हैं :—(1) पातिमोक्ख (2) सुत्तविभंग (3) खंदक और (4) परिवार। इनमें भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिये अनुशासन सम्बन्धी नियम, बुद्ध के जीवन एवं संघों के इतिहास आदि पर प्रकाश डाला गया।

सुत्त पिटक 5 निकायों में बँटा है—(1) दीर्घ निकाय, (2) मज्झिम निकाय, (3) संयुक्त निकाय, (4) अंगुत्तर, (5) खुद्दक निकाय। सुत्त पिटक में बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है और इस धर्म के सिद्धान्तों को पुनरुक्ति द्वारा स्मरणीय बनाने का प्रयास किया गया है।

अभिधम्म पिटक की विषय वस्तु वही है जो अन्य दो पिटकों की है। इसमें प्रश्नोत्तर विधि में दार्शनिक तत्वों का विवेचन हुआ है। उसकी कथा-वस्तु विशेष प्रसिद्ध है और उसमें आत्मा, बोधिसत्व, बुद्धत्व आदि की प्राप्ति का वर्णन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न 27--'जैन आगम' साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

जैन धर्म के साहित्य को 'आगम' के नाम से पुकारा जाता है । इस साहित्य की भाषा महाराष्ट्री और और अर्ध-मागधी प्राकृतों की उपज है । आगम साहित्य को 2 भागों में विभाजित किया गया है :—(1) अंगपविट्ठ और (2) अंग बाहिरीय । इस साहित्य के कुल 6 वर्ग हैं । अंग, उपांग, प्रकीर्णक, छेदसूत्र, सूत्र और मूलसूत्र । 'अंग' जैन साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण भाग है । इनकी संख्या 12 हैं । इनमें जैन साधुओं के नियमों, विभिन्न जैन सम्प्रदायों, भिक्षुओं की कठिनाइयों को दूर करने के उपायों, जैन धर्म के सिद्धान्तों, महावीर का चरित्र, अच्छे बुरे कर्मों, पंच महाव्रत और स्वर्ग एवं नरक आदि की प्राप्ति के कारणों का विस्तृत विवरण दिया गया है । प्रत्येक 'अंग' से सम्बन्धित उपांग हैं । प्रकीर्णकों की संख्या 10 है और यह ज्यादातर छन्दों में हैं । छेद सूत्र 6 हैं जिनमें नियम के उल्लंघन के लिये दण्ड, प्रायश्चित्त, तीर्थङ्करों का जीवन,वर्षा ऋतु के नियमों आदि का उल्लेख है । मूल सूत्रों में आकर्षक शैक्षिक कथायें हैं जिनमें दैनिक कर्तव्यों, अनुशासन के नियमों आदि का उल्लेख हुआ ।

प्रश्न 27—सङ्गम साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।

सङ्गम साहित्य और उसका रूप—सङ्गम साहित्य तामिल भाषा की उपलब्धि है । तामिल भाषा अत्यन्त प्राचीन भाषा है । तामिली परम्परा के अनुसार मदुराई के अन्तर्गत विद्वानों की सभायें होती थीं जिन्हें कि सङ्गम कहा जाता था । 3 सङ्गमों का उल्लेख प्राप्त होता है । पहले संगम का सम्बन्ध पौराणिक देवताओं से है । इस समय जो रचनायें हुईं उनका पता नहीं चलता है । दूसरे सङ्गम की रचनाओं में केवल तामिल व्याकरण 'तोल्काप्पियम्' ही प्राप्त होता है । तृतीय सङ्गम का संबन्ध 200 से अधिक कवियों से था । इसका समय छठी और सातवीं शताब्दी है । यह सङ्गम साहित्य छठी से सातवीं शताब्दी में लिखा गया और यह 8 संग्रहों एवं 10 गीतों में पाया जाता है । ये 8 संग्रह हैं :—(1) नर्रिणै, (2) कुरुन्तोगै, (3) ऐङ्गुरुनूरु, (4) पदिरुपट्टु, (5) परिपादल, (6) कालत्तोगै, (7) अगनानूरु, (8) पुरुनानुरु । इनमें से पहले 2 में क्रमशः, 400-500 शृंगारिक रचनायें हैं । चौथे में चेर राजा की प्रशंसा में 10, 10 छन्दों की कवितायें हैं । पाँचवें में देवताओं की 24 स्तुतियाँ हैं । छठे और सातवें में क्रमशः 50 और 400 शृंगारिक गीत हैं । आठवें में 400 स्तुतियाँ हैं ।

सङ्गम साहित्य की भाषा—सङ्गम साहित्य की भाषा अत्यन्त प्राचीन तामिल है जो आजकल प्रचलित नहीं है और जिन्हें तामिल भाषी भी विशेष अध्ययन के बिना नहीं समझ सकते । सङ्गम साहित्य की शैली लोक साहित्य से काफी मिलती जुलती है । इस साहित्य में ग्रामीण कृषकों के जीवन का चित्रण अत्यन्त सुन्दरता के साथ किया गया है । तामिल भाषा की कविताओं में पदादि अनुप्रास अधिक है । यह विशेषता सङ्गम साहित्य में भी देखी जा सकती है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न 28—चैतन्य महाप्रभु के योगदान का विशेष विवरण कीजिये।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

चैतन्य के जीवन दर्शन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

जीवन-परिचय—चैतन्य महाप्रभु बंगाल के प्रमुख सन्तों में से हैं। इनका जन्म बंगाल के नवद्वीप में 1542 विक्रमीय को हुआ। इनकी माता का नाम शचि-देवी और पिता का नाम जगन्नाथ था। बाल्यावस्था में चैतन्य का नाम 'निकाई' था। इनके बड़े भाई संन्यास ले चुके थे। चैतन्य अत्यन्त नटखट एवं प्रतिभायुक्त थे। 5 वर्ष की आयु में उन्होंने अध्ययन प्रारम्भ किया और शीघ्र ही विद्या-सागर की उपाधि ग्रहण करके व्याकरण की पाठशाला चलाई। इनका विवाह लक्ष्मी प्रिया से हुआ परन्तु शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई। पिता और पत्नी की मृत्यु से दुखी होकर चैतन्य ने पढ़ाना छोड़ दिया और भगवद्भक्ति में लीन हो गये। 24 वर्ष की अवस्था में उन्होंने केशवभारती से दीक्षा ली और तब से उनका नाम चैतन्य पड़ा। ये भगवत्प्रेम के गीत गाते जिधर निकल जाते उधर लोगों की भीड़ लग जाती। 1590 विक्रमी मे नीला-चल में उनकी मृत्यु हुई।

चैतन्य का दर्शन—चैतन्य ने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की और वे केवल मौखिक उपदेश देते थे। उन्होंने 8 श्लोकों का 'शिक्षाष्टक' लिखा जो अष्टपदी के नाम से विख्यात है। अष्टपदी में चैतन्य ने कहा है कि मन के दर्पण को स्वच्छ रखने वाला, संसार की विशाल दावाग्नि को शान्त करने वाला, कल्याण रूपी कुमुदनी को विकसित करने वाला, विद्यारूपी वधू का जीवन, प्रत्येक कदम पर पूर्ण अमृत का आस्वादन कराने वाला, आनन्द समुद्र को बढ़ाने वाला सम्पूर्ण आत्मा को बहलाने वाला श्रीकृष्ण का संकीर्तन सबसे सुन्दर है।

चैतन्य भगवत स्मरण आदि से समय का कोई बन्धन नहीं मानते थे। उनका विश्वास कृष्ण की 3 शक्तियों में—चित्त, माया और जीव में था। राधा को वे आनन्द शक्ति का प्रतीक मानते थे। उनका कहना था कि कृष्ण के सतत् प्रेम से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। कृष्ण की कृपा बहुत बड़ी चीज है।

बंगाल के वैष्णव साहित्य को उन्होंने अत्यधिक प्रभावित किया और उनकी प्रेरणा से रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रामानन्द तथा गोपाल भट्ट आदि ने उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

प्रश्न 29—तुकाराम के जीवन और प्रकृति पर एक सन्क्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

सन्त कवि तुकाराम केवल महाराष्ट्र के ही नहीं अपितु समस्त भारत की महान् विभूति हैं। इनका जन्म 1608 ई० में पूना में हुआ था। वह शिवाजी के समकालीन थे। उनके पिता का नाम बालोजी और माता का नाम कंकई था। उनके दो भाई थे और दोनों की मृत्यु अल्प आयु में हो गई थी। तुकाराम जाति के शूद्र थे परन्तु उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकु में बनिये का धन्धा होता था। अत्यन्त अल्पायु से ही तुकारामअत्यन्त तीक्ष्ण द्धि बु वाले थे। उनके 2 विवाह हुये थे। पहली पत्नी का नाम रखुमाई और दूसरी का नाम जिजायी अवली था।

1625 ई० से तुकाराम पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। पहले उनके पिता की मृत्यु हो गयी और उसके बाद उन्होंने व्यापार में धोखा खाया। धीरे-धीरे उनका व्यापार इतना बिगड़ गया कि एक दिन दिवाला निकल गया। 1630 ई० में महाराष्ट्र में भयंकर अकल पड़ा और तुकाराम की पहली पत्नी एवं पुत्र स्वर्ग सिधार गये। इसके बाद उनकी माता की मृत्यु हो गई। इनकी दूसरी पत्नी का स्वभाव तीखा था। एक दिन जब तुकाराम व्यापार से लाभ कमाकर लौटे तो उन्होंने अपना अधिकांश धन गरीब ब्राह्मणों को दे दिया। इससे उनमें और पत्नी में झगड़ा हुआ और तुकाराम घर से विरक्त हो गये। घर से निकल कर वह इन्द्रायणी से 8 मील दूर भामनाथ पहाड़ी पर एकान्त में विचरण करने लगे। 15 दिन बाद वह घर लौटे परन्तु फिर उनका सांसारिकता में मन न लगा। प्रातःकाल वह उठकर विट्ठल की पूजा करते, ज्ञानेश्वरी अथवा नाथ भागवत का पारायण करते और रात्रि को हरि कीर्तन सुनते। जब दोनों भाइयों में सम्पत्ति का बँटवारा हुआ तो तुकाराम ने अपना सारा धन इन्द्रायणी नदी में फेंक दिया और इस प्रकार यह सभी सांसारिक झंझटों से मुक्त हो गये और अब वह सिर्फ विट्ठल का नाम लेते और 'अभंगों' की रचना करते।

तुकाराम ने अभंग छन्द में अपनी कविता की है। उनके अभंगों में एक-एक शब्द में भक्ति दिखायी पड़ती है। ईश्वर प्राप्ति के लिये तुकाराम ने उपवास, जप, तप आदि का सहारा लिया था और यह कहा कि केवल भक्ति के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। वह भक्ति भाव से कीर्तन करने और श्री विट्ठल का नाम जपने को अत्यधिक महत्त्व देते थे। जाति-वर्ण के बन्धन को वह नहीं मानते थे। उन पर नामदेव एकनाथ का काफी प्रभाव पड़ा था।

तुकाराम के रचे हुये लगभग 5000 अभंग आज प्राप्त हैं जो महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। तुकाराम वारकरी सम्प्रदाय में विश्वास रखते थे। इस सम्प्रदाय में विट्ठल की उपासना को अत्यधिक महत्व दिया गया था। इस पंथ की स्थापना सन्त ज्ञानेश्वर ने की थी। नामदेव एवं एकनाथ ने इसे आगे बढ़ाया था। तुकाराम ने इस सम्प्रदाय को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाया। तुकाराम में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। शिवाजी में राष्ट्रीयता की भावना भरने वाले संत रामदास एवं तुकाराम ही थे। वह एक युगद्रष्टा थे। 1650 ई० में इनका देहान्त हो गया।

प्रश्न 30---गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति को क्या योगदान दिया है ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

तुलसीदास के जीवन, रचनाओं तथा आधुनिक भारतीय हिन्दू समाज पर प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान तिथि........ पृ०सं०........

तुलसीदास के जीवन का वर्णन और उनके उपदेशों का विवरण दीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

जीवनी—तुलसीदास का जन्म सं० 1554 में बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में माना जाता है। वे सरयूपारी ब्रह्मण थे। उनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम दुबे था। मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण माता-पिता ने उनको छोड़ दिया, इससे तुलसीदास को अपने बचपन में बहुत कष्ट उठाने पड़े। सौभाग्य से उनकी भेंट अपने समय के श्रेष्ठ विद्वान बाबा नरहरि दास से हो गई। उनके साथ तुलसीदास काशी चले गये। वहाँ उन्होंने वेद, शास्त्र, आदि का अध्ययन किया। इसके बाद वे अपने जन्म-स्थान को लौट आये।

तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। वे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते थे। एक बार उनकी अनुपस्थिति में वह अपने पिता के घर चली गई, तुलसी उसके वियोग को सहन न कर सके और आधी रात को उसके पास पहुँच गये। यह देखकर रत्नावली ने उनसे कहा—

'अस्थि चर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
जो ऐसी श्रीराम में, होति न तब भव भीति॥"

पत्नी की इस बात का तुलसी पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे काशी जाकर संन्यासी हो गये। वहीं सं० 1680 में असी घाट पर उनकी मृत्यु हो गई।

रचनायें—तुलसीदास के लिखे 37 ग्रन्थ माने जाते हैं, इनमें से आगे लिखे 12 प्रमाणित हैं—(1) रामचरितमानस, (2) विनय पत्रिका, (3) दोहावली, (4) गीतावली, (5) कवितावली, (6) रामाज्ञा प्रश्न, (7) बरवै रामायण, (8) रामलला नेहछू, (9) कृष्ण गीतावली, (10) वैराग्य संदीपनी, (11) पार्वती मंगल और (12) जानकी मंगल।

भक्ति भावना—तुलसीदास राम के परम भक्त थे। उनकी भक्ति में दास्य भाव मिलता है। वे राम को अपना स्वामी और अपने को उनका दास या सेवक मानते थे। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की। राम से अपने सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए, वे लिखते हैं:—

"तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं, भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी।"

समन्वय की भावना—तुलसीदास की रचनाओं में समन्वय की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने ब्राह्मण और शूद्र, भक्ति और ज्ञान, गृहस्थ और वैराग्य, लोक-भाषा और साहित्य-भाषा, शैवों और वैष्णवों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने सीता को शक्ति की पूजा करने वाली, राम को शिव का भक्त और क्षत्रिय होते हुए निषाद को गले लगाते हुए दिखाया। राम के रूप में उन्होंने साकार और निराकार का समन्वय किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादा का पालन—तुलसी के सभी पात्र—राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, आदि—मर्यादा का पालन करते हैं। उसका कोई भी पात्र सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता है। राम अपने पिता की आज्ञा मानकर राज्य को छोड़ देते हैं और वन को जाते हैं। वालि और सुग्रीव तथा राम और रावण के युद्ध में मर्यादा का पालन किया जाता है। उसे भङ्ग करने वाले का विनाश होता है, चाहे वह शक्तिशाली रावण ही क्यों न हो।

आदर्श पात्र—तुलसी के पात्र अच्छे या बुरे गुण के आदर्श हैं। दशरथ आदर्श पिता, राम आदर्श पुत्र, लक्ष्मण आदर्श भाई, सीता आदर्श पत्नी, हनुमान आदर्श सेवक और सुग्रीव आदर्श मित्र है। इनके विपरीति, वालि, रावण, आदि घृणित दोषों के आदर्श हैं।

भाषा—तुलसीदास ने अवधी और व्रजभाषा-दोनों का प्रयोग किया है। दोनों पर समान अधिकार है। उन्होंने 'रामचरितमानस', 'वरवै रामायण', 'रामलला नहछू' आदि अवधी में लिखी हैं। उनकी 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली, 'दोहावली' आदि व्रजभाषा में हैं।

साहित्य में स्थान—हिन्दी साहित्य में तुलसी का वही स्थान है, जो संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि का है। उनको हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ कवि माना जाता है। वे इस आसन पर अडिग रूप से विराजमान हैं।

समाज सुधारक तुलसी—तुलसी हमारे सम्मुख केवल मात्र एक महान् भक्त और कवि के रूप में ही नहीं आते बल्कि एक महान समाज सुधारक के रूप में भी आते हैं। उनका रामचरितमानस भारतीय समाज के लिए सदैव से एक आदर्श ग्रन्थ रहा है। उसमें उन्होंने एक आदर्श राज्य पर प्रकाश डाला है। तुलसी के राम एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श पति और आदर्श राजा थे। भरत के रूप में उन्होंने आदर्श भाई, हनुमान के रूप में आदर्श सेवक और अयोध्या के लोगों के रूप में आदर्श जनता का रूप प्रस्तुत किया है। तुलसी ने गिरी हुई हिन्दू जनता में एक नई चेतना भरी, पथभ्रष्ट जनता को उन्होंने आदर्श का मार्ग दिखाया। उनके समाज दर्शन का आधार संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली, वर्णाश्रम धर्म और आदर्श राजतंत्र है। तुलसी के समय में ये समस्त संस्थायें छिन्न-भिन्न हो गई थीं। तुलसी ने इन संस्थाओं की प्रतिष्ठा का मार्ग पुनः प्रशस्त किया।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी एक महान भक्त, एक महान कवि और एक महान समाजसुधारक थे। उनकी जैसी प्रतिभा वाला अन्य कोई कवि हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ।

प्रश्न 31—समाज सुधारक के रूप में रवीन्द्र नाथ ठाकुर के कार्यों का मूल्यांकन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

कविता, शिक्षा एवं लोकसुधार के क्षेत्र में श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पुस्तकालय ... पु०सं० ...124...

कार्य का मूल्यांकन कीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

रवीन्द्रनाथ टैगोर का भारतीय साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बङ्गाल के एक सुसंस्कृत परिवार में सन् 1861 ई० में हुआ। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाज के नेता और प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता थे। रवीन्द्र आरम्भ से ही धर्म, साहित्य और कला एवं संगीत के वातावरण में रहे। संस्कृत, बङ्गाली और अंग्रेजी का उन्होंने विशेष रूप से अध्ययन किया। 16 वर्ष की अवस्था में वह पहली वार इंगलैण्ड गये। रवीन्द्र के ऊपर कालिदास, बंगाल के वैष्णाव कवियों और अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। 1901 ई० में उन्होंने शान्तिनिकेतन की स्थापना की जिसने कि भारत में शिक्षा के प्रसार में महान योगदान दिया। शान्तिनिकेतन के रूप में भारत समाज को उनकी देन सदैव अमर रहेगी। रवीन्द्र अपने युग में प्रचिलित शिक्षा पद्धति से असुन्तुष्ट थे और शान्तिनिकेतन में उन्होंने आदर्श शिक्षा का रूप रखा। 1911 ई० में रवीन्द्र इंगलैण्ड गये और अपनी कुछ रचनाओं के अंग्रेजी अनुवाद साथ ले गये। अगले वर्ष उनकी ये रचनायें 'गीताञ्जलि' के नाम से छपी। 1913 ई० में उन्हें 'नोबुल पुरस्कार' प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार पहली वार किसी एशिया वासी को मिला था। जीवन के शेष वर्ष उन्होंने शान्ति-निकेतन में शिक्षण कार्य और साहित्य की सेवा करते हुये विताया। 80 वर्ष की सुदीर्घ आयु में उनकी मृत्यु हुई।

रवीन्द्र की प्रतिभा अत्यन्त व्यापक थी। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने 1000 से अधिक कवितायें, 8 उपन्यास और कई कहानी-संग्रह एवं 2000 से अधिक गीत लिखे। संगीत के क्षेत्र में उन्होंने पाश्चात्य और भारतीय संगीत का सम्मिश्रण करके नई संगीत परम्परा को जन्म दिया जिसे कि हम 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से पुकारते हैं। अपनी नई कविताओं के भावों की व्याख्या करने के हेतु उन्होंने भावात्मक चित्र बनाया।

रवीन्द्र हमारे सम्मुख एक शिक्षाविद, सामाजिक और सुधारवादी नेता एवं राजनीतिज्ञ के रूप में आते हैं परन्तु प्रधान रूप से वह कवि और कथाकार हैं। 'कड़ी और कोमल' 'मानसी' में रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा के दर्शन होते हैं। 'उर्वशी' उनका श्रेष्ठ ललित काव्य है। 'सोनार तरी' रवीन्द्र की प्रथम रहस्यात्मक कविता है। इस रहस्य भावना का 'नैवेद्य', 'सेवा', 'गीताञ्जलि' में उत्तरोत्तर विकास हुआ है। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यन्जना के दर्शन 'वलाका' में होते हैं। उन्होंने देश प्रेम, राष्ट्रीयता और सामाजिक व्यंग की भावना से ओतप्रोत गीत भी लिखे। 'जन मन गण अधिनायक' से आरम्भ होने वाला गीत आज हमारा राष्ट्रीय गीत है। उपन्यासकार के रूप में अत्यधिक ख्याति अर्जित की। उनके उपन्यासों में बंगाल के उच्च और मध्यम वर्गों का चित्रण है। 'राजर्षि', 'वहुठकुरानीर हाट' 'चोखेर बालि', 'नौका डूबी,' गोरा,'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चतुरंग' और 'घरे बारे' रवीन्द्रनाथ के उपन्यास हैं। नाटक के क्षेत्र में भी इ की महान देन है। 'वाल्मीकि प्रतिभा,' 'कालमृगया,' 'मायार खेला', 'प्रकांतिर प्रतिशोध,' 'राजा और रानी', 'विसर्जन', 'मालिनी', 'विदाय विलाप', 'शारदोत्सव', 'डाकघर' और 'फाल्गुनी' आदि उनके नाटक हैं।

रवीन्द्र एक स्वतंत्र विचारक थे। उन्होंने प्राचीन मान्यताओं और विचारों का अन्धानुकरण नहीं किया। दूसरे वह पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण के विरोधी थे। उनकी कृतियों में हमें वर्तमान भारत के सच्चे रूप के दर्शन होते हैं। समाज की विभिन्न समस्याओं पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है।

रवीन्द्र को अपने देश पर अत्यधिक गर्व था। अमृतसर के जलियांवाला बाग की घटना के विरोध स्वरूप उन्होंने 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया। रवीन्द्र का राष्ट्रवाद अत्यन्त उदार था। उन्होंने भारत को केवल भारतीयों की भूमि ही नहीं, बल्कि मानवीय एकता का रूप ऐसा प्रतीक माना जहाँ विभिन्न जातियों और विभिन्न धर्मों के विभिन्न भाषा-भाषी लोग आश्रय प्राप्त करते हैं। वह मानवता को राष्ट्रीयता से अधिक महत्व देते हैं। 'गीताञ्जलि' और 'विश्व-भारती' के रूप में रवीन्द्र की ऐसी देनें हैं जिन्हें कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

प्रश्न 32—भारती पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

तामिल साहित्य में भारती का क्या स्थान है।

परिचय—तामिल भाषा के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्य भारती की गणना भारत के महानतम कवियों में की जाती है। उनका जन्म 10 दिसम्बर, 1882 को तामिल नाडु के एट्टियापुरम नामक ग्राम में हुआ। भारती की प्रारम्भिक शिक्षा तिरूनेलवेली हिन्दू कालेज मे हुई। 15 वर्ष की अवस्था में उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु के बाद भारती ने बनारस में 3 वर्ष तक विद्याध्ययन किया। उन्होंने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया। बनारस में भारती राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े और देश सेवा में लग गये। उनकी राष्ट्रीय कवितायें तामिल साहित्य की अनमोल निधि हैं।

वाराणसी में 3 साल रहने के पश्चात् वह जीवकोपाजन के हेतु एट्टियापुरम लौट आये और विभिन्न पदों पर कार्य किया और एक जमींदार राजा के यहाँ नौकरी कर ली। इसके बाद वह मथुरा के एक स्कूल में शिक्षक और फिर मद्रास के लोकप्रिय तामिल दैनिक में नोकर रहे। 1907 ई० में उन्होंने 'इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया जिसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद की कटु आलोचना की गई। 1905 ई० में वह पाण्डेचेरी गये और वहाँ 3/4 वर्ष रहे। पाण्डेचेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने अनेक रचनायें लिखीं। 1918 ई० में वे पुनः स्वदेश लौट आये और पुराने पत्र में कार्य करते रहे। 39 वर्ष की अल्प आयु में ही उन्हें एक हाथी ने अपनी सूँड़ से दूर फेंक दिया और उनकी मृत्यु हो गई।

साहित्यिक भारती—भारती हमारे सम्मुख मुख्य रूप से एक तामिल साहित्यकार के रूप में आते हैं। उनका गद्य-पद्य दोनो पर समान अधिकार था। उनकी गद्य रचनाओं में 'कल्पना का रथ' सबसे प्रसिद्ध है। उन्होंने तामिल गद्य की एक नवीन शैली का सृजन किया परन्तु अपनी रचनाओं के लिये वह विशेष रूप से प्रसिद्ध हुये। कृष्णनपाट (कृष्ण गीत) पाप्पापाट्टुगल (बच्चों के गीत), स्वदेश गीत, किलिप्टाट (तोते के गीत) और खण्ड काव्य 'पांचाली शपथम्' में भारती की प्रसिद्ध पद्य रचनायें हैं।

राष्ट्रप्रेमी भारती—भारती को जितनी ख्याति एक साहित्यकार के रूप में प्राप्त हुई उतनी ही ख्याति एक राष्ट्र प्रेमी के रूप में भी प्राप्त हुई। उनकी क्रान्तिकारी रचनाओं के कारण ही उन्हें वह गौरव प्राप्त हुआ जो विरले लोगों को प्राप्त होता है। भारती की ख्याति का मुख्य कारण उनके राष्ट्रीय गीत हैं। इन गीतों में वे हमारे सम्मुख एक क्रान्तिकारी और विप्लवकारी के रूप में आते हैं। उनके स्वदेश गीत अधिक लोकप्रिय हैं। अपने गीतों में उन्होंने भारत की दुर्दशा और दासता का चित्रण किया और उज्जवल भविष्य की कल्पनायें कीं। वे एक सच्चे देशभक्त थे और अपने देश की उन्नति चाहते थे। समाजवादी प्रवृत्ति के वह प्रबल समर्थक थे। रूस में जारशाही नष्ट होने पर उन्होंने हर्ष प्रकट किया। वह मनुष्य मात्र के अभावों को नष्ट करना चाहते थे और राष्ट्र के लिये अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिये तत्पर थे।

प्रश्न 33—कन्हैया लाल माणिकलाल मुन्शी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

गुजराती साहित्य में कन्हैया लाल माणिक लाल मुन्शी का अपना अलग स्थान है। उनका जन्म 1887 ई० में भड़ौच में हुआ था। आरम्भ से ही मुंशी जी महर्षि अरविंद से विशेष प्रभावित थे। वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने बम्बई में वकालत प्रारम्भ की। मुन्शी जी एक उच्च-कोटि के साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य की विभिन्न धाराओं—उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवन चरित्र आदि पर अपनी लेखनी चलाई। उनकी रचनायें हैं—वेरनी वसूलात, कोनोपाक, स्वप्नद्रष्टा, स्नेहसंभ्रम, तपस्विनी, पाटणनी प्रभुता, गुजरातनो नाथ, राजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ, भगवान कौटिल्य, जयसोमनाथ, भगवान परशुराम, लोमहर्षिणी, विश्वामित्र ऋषि, देवदीधेली, शम्बरकन्या, लोपामुद्रा, पुत्र सोमवड़ी, तर्पण, अविभक्त आत्मा, पुरन्दर-पराजय, बाबा शेठनुं स्वातंत्र्य, वे खराब जण, आज्ञांकित, काकानी शशी ब्रह्मचर्याश्रम, पीड़ाग्रस्त प्रोफेसर, डा० मधुरिका, छीएतेज ठीक, वाह रे में वाह, ध्रुवस्वामिनी-देवी, अर्धरस्ते, सीधांचढाण, स्वप्नासिद्धिनी शोधयां, मारी बिनजवाबदार कहानी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध-अनुसन्धान 304 उ५६

यूरापनी यात्रा, शिशु अने सखी, मारी कमला केटलेखों, गुजरातना ज्योतिर्धरों, थोडांक रसदर्शनों, नरसैयों भक्त हरिनों, नर्मद, गुजरातनी अस्मिता। मुन्शी जी ने साहित्य-परिषद के संचालन में विशेष योगदान दिया और तीन वार वे साहित्य-परिषद के सभापति रहे। 1938 ई० में मुन्शी जी ने भारतीय विद्या भवन की स्थापना की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद को भी मुन्शी जी ने सुशोभित किया। 1951 ई० में उन्होंने संस्कृत विश्व-परिषद की स्थापना की।

देश के स्वतंत्रता संग्राम में भी मुंशी जी का विशेष योगदान रहा। अखिल भारतीय कांग्रेस के सदस्य के रूप में उहोंने जेल यात्रायें कीं। 1937 ई० में आप बम्बई के गृह मंत्री वने। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उहोंने अनेक पदों को सुशोभित किया।

मुंशी जी का महत्व एक साहित्यकार और साहित्य सेवी के रूप में अधिक है। उनकी कहानियाँ अत्यत रोचक हैं और उनमें मानव-चरित्र का सुन्दर अंक न है। साहित्यकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि उनके एतिहासिक ग्रंथों, उपयासों एव नाटकों की वजह से है। पाटणनी प्रभुता, गुजरातनो नाथ, राजाधिराज। जय सोमनाथ और पृथ्वीवल्लभ आदि उपन्यासों ने उहें भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों के मध्य स्थान दिला दिया है। मुंशी जी आर्य संस्कृति के दृढ़ विश्वासी एवं समाजसुधारक भी थे। भारतीय संस्कृति के उत्थान और भारतीय समाज के सुधार में मुंशी जी ने विशेष योगदान दिया।

प्रश्न 34—मुन्शी प्रेमचन्द के जीवन एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

मुन्शी प्रेम चन्द पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

प्रेमचन्द की जीवनी—प्रेमचन्द का जन्म सं० 1937 (सन् 1880) में काशी जिले के 'लमही' ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम अजायवराय और माता का नाम आनन्दी देवी था। वे कायस्थ जाति के थे। अजायवराय डाकखाने में बीस रुपये मासिक वेतन पर कार्य करते थे। इससे सारे परिवार का खर्च चलना कठिन था।

प्रेमचन्द के बचपन के दों नाम थे-धनपतराय और नवाबराय। जब वे लगभग 9 वर्ष के थे, तभी उनकी माता की मृत्यु हो गई थी और उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। प्रेमचन्द ने आरम्भ में घर पर ही उर्दू और फारसी की शिक्षा प्राप्त की। उपके बाद उन्होंने क्वीन्स कालेज में प्रवेश लिया। निर्धन होने के कारण उन्हें शाम को ट्यूशन करनी पड़ती थी। उसके बाद वे घर जाते थे। सन् 1896 में उन्होंने मेट्रीकुलेशन परीक्षा पास की, पर वे इण्टर की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके। इसलिए उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ना छोड़ने के बाद वे चुनार के मिशन स्कूल में अध्यापक हो गये। कुछ समय के बाद उन्होंने इण्टर और सी० टी० परीक्षायें पास कीं। अपनी इन शैक्षिक योग्यताओं के कारण वे 'सब डिप्टी इंस्पेक्टर' का सरकारी पद पाने में सफल हुए। सन् 1919 में वे इस पद पर गोरखपुर में थे। वहीं से उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन बड़े जोर से चल रहा था। उससे प्रभावित होकर उन्होंने 1920 में सरकारी नौकरी छोड़ दी। उसके बाद वे काशी में रहकर साहित्य सेवा के कार्य में जुट गये। सं० 1993 (सन् 1936) में उनकी मृत्यु हो गई।

प्रेमचन्द की रचनायें—प्रेमचन्द जी ने निम्नलिखित रचनायें कीं—

(1) **उपन्यास**—सेवा-सदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, वरदान, गबन, गोदान।

(2) **कहानी**—मानसरोवर, प्रेम-पच्चीसी, प्रेम द्वादशी, प्रेमतीर्थ, सप्तसुमन, सप्त सरोज, नवनिधि आदि।

(3) **नाटक**—कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी, रूठी रानी।

(4) **अन्य रचनायें**—कुछ जीवन-चरित्र, निबन्ध और अनूदित रचनायें।

प्रेमचन्द की साहित्य-सेवा—प्रेमचन्द लेखक के रूप में सबसे पहले 'मर्यादा' का सम्पादन करके जनता के सामने आये। उन्होंने लखनऊ से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'माधुरी' का भी सम्पादन किया। उन्होंने काशी में अपना प्रेस खोलकर 'हंस' और 'जागरण' का सम्पादन करना प्रारम्भ किया। सम्पादन कार्य के साथ-साथ उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानियां आदि भी लिखीं। अपने सुन्दर उपन्यासों के कारण वे उपन्यास सम्राट कहे जाते हैं।

प्रेमचन्द ने कहानीकार के रूप में अपना नाम अमर कर दिया है। उन्होंने पहले उर्दू में और फिर हिन्दी में कहानियां लिखीं। उर्दू के संसार में उन्होंने सं० 1957 में और हिन्दी के जगत में सं० 1973 में प्रवेश किया। हिन्दी में लिखना आरम्भ करने से पहले उन्हें उर्दू में लोक प्रियता मिल चुकी थी। कथा-वस्तु पर तो वे पहले ही अधिकार कर चुके थे, हिन्दी भाषा पर उन्होंने धीरे-धीरे अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अतः उनको हिन्दी के नवीन क्षेत्र में लोकप्रियता प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। इन कहानियों ने हिन्दी के कथा-साहित्य के स्तर को बहुत ऊंचा उठा दिया। उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, निबंध, जीवनियां आदि भी लिखीं।

प्रेमचन्द एक युगान्तरकारी साहित्यकार हैं। यह कहा जाता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में वह टीले की भांति हैं जिनके दोनों ओर ढाल है। 'गोदान' प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 'गबन', 'कर्म-भूमि', 'निर्मला' आदि उपन्यासों का अपना अलग महत्व है। उनके उपन्यासों में समाजिक जीवन की समुचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झांकी देखने को मिलती है। वह एक आदर्शवादी कलाकार हैं परन्तु यथार्थ की पृष्ठ-भूमि पर ही उन्होंने अपने आदर्श को खड़ा किया है। उनकी कहानियों में चरित्र चित्रण का सहज चित्रण होता है। प्रेमचन्द के साहित्य में राष्ट्रप्रेम, मानव-कल्याण, मानवसुधार का सन्देश है। हिन्दी साहित्य को प्रेमचन्द के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अध्याय ७

वैज्ञानिक विचारधारा

(Scientific Thoughts)

प्रश्न 35—प्राचीन भारत में विज्ञान की उन्नति का चित्रण कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

प्राचीन युग में भारत में धर्म, दर्शन और साहित्य की उन्नति के साथ ही विज्ञान की भी उन्नति हुई। गणित के क्षेत्र में समस्त संसार भारत का ऋणी है। यहां हम विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हुई उन्नति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

गणित—गणित की तीनों शाखाओं अंक गणित बीजगणित और रेखागणित का ज्ञान वैदिक काल में भारतीयों को था। वैदिक युग में ही यहाँ शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्यम, अन्त और परार्द्ध जैसी बड़ी संख्याओं की कल्पना की जा चुकी थी। यजुर्वेद में पहाड़े भी मिलते हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारत में दशमलव पद्धति भी प्रचलित थी। योगसूत्र के भाष्य और वाराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका में इस पद्धति का प्रयोग है जिससे स्पष्ट है कि पाँचवीं शताब्दी तक भारत में दशमलव पद्धति काफी प्रचलित हो चुकी थी। 8वीं शताब्दी में अरबों ने इसे सीखा और गणित को 'हिन्दसा' कहा। बीजगणित का विकास भी भारत में अत्यन्त प्राचीन काल में हो चुका था। जिन नियमों का ज्ञान यूरोप को 17वीं और 18वीं शताब्दी में हुआ भारत में वह 12वीं शताब्दी में ही ज्ञात था। ऋण राशियों के समीकरण और वर्गमूल, वर्ग समीकरण हल करना, अंक वर्णों का समीकरण और अंकपाश नियम आदि की खोज भारत में ही हुई।

रेखा गणित का विकास भी वैदिक काल में ही हो चुका था। रेखा गणित के अनेक पारिभाषिक शब्द ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। शुल्वसूत्रों (लगभग 500 ई०पू०) में कोण, त्रिकोण मापने की विधि, वर्ग त्रिकोण, वृत्त आदि के सम्बंधों और उनको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नापने की विधियों का उल्लेख हुआ है। वर्गमूल, घनमूल निकालना भी उस समय ज्ञात हो चुका था। भास्कराचार्य शंकुवर्तुलाकार पदार्थों का आयतन निकालने में समर्थ थे। 'ज्या' (π) का मान आर्यभट्ट ने खोज था। वे 'ज्या' (π) $= \frac{62833}{20000} = 3.1416$ मानते हैं जो आधुनिक मान के अत्यन्त निकट है।

खगोल विद्या और ज्योतिष—खगोल विद्या का प्रारम्भ भी वैदिक काल में हो चुका था। यज्ञों को विधिवद् करने के हेतु उनका उचित समय पर आरम्भ और अन्त किया जाता था। वैदिक ऋषियों को चन्द्र, गुरु, मंगल और शनि आदि ही नहीं बल्कि रेवती, मघा और पूर्व-फाल्गुनी आदि नक्षत्रों का ज्ञान भी था। चन्द्र एवं सौर दोनों ही मासों से वे परिचित थे। उनको सूर्यघड़ी का भी ज्ञान था और उसकी कील की सहायता से वे दिशाओं को पहचान लेते थे। वैदिक युग के बाद इसका इतना अधिक विकास हुआ कि इसकी गणना षट् वेदांगों में होने लगी। लगध का सूत्र शैली में लिखा हुआ वेदांग विशेष प्रसिद्ध है। बृहस्पति, पितामह, पाराशर, गर्ग, सिद्धसेन, विजय-नन्दी, प्रद्युम्न, लाटाचार्य, सिंहाचार्य, जीवशर्मा इत्यादि खगोलशास्त्रियों के नाम मिलते हैं। गुप्तकाल में ज्योतिष के क्षेत्र में अपार उन्नति हुई। आर्यभट्ट ने सौर वर्ष में 365 दिन 5 घण्टे 55 मिनट और 12 सेकेण्ड निकाला जो बिलकुल ठीक है। पृथ्वी गोलाकार है और उसकी परिधि 24,135 मील है, यह भी आर्यभट्ट ने प्रतिपादित किया। आर्यभट्ट ने ही बताया कि चन्द्रग्रहण का कारण पृथ्वी पर छाया पड़ना है। आर्यभट्ट के बाद वराहमिहिर ब्रह्मगुप्त, पृथयशस, भट्टोत्पल, लल्ल; पृथदक, श्रीपति, वरुण, भोजदेव, ब्रह्मदेव और भास्कराचार्य आदि ने ज्योतिष आदि के क्षेत्र में भारत को महान देन दी।

भौतिक शास्त्र—प्राचीन युग में भारत में भौतिक शास्त्र को एक अलग शास्त्र न मान कर दर्शन और धर्म के अन्तर्गत ही माना जाता था। दर्शन और धर्म के अनेक सिद्धान्त आज के भौतिक शास्त्र के सिद्धान्तों से साम्य रखते हैं। आधुनिक 'एकत्व का सिद्धान्त' वैदिक वाक्य 'तत्वमसि' में निहित है। आधुनिक वैज्ञानिकों के इलेक्ट्रान में इसी सिद्धान्त का प्रमुख रूप दिखलाई पड़ता है। उपनिषद काल का 'एकत्व सिद्धान्त', वैशेषिक, जैन और बौद्ध धर्मों का परमाणुवाद एवं बौद्धों का विवर्तन वाद यह सिद्ध करता है कि यद्यपि भारत में उस समय प्रयोगशालाओं का अभाव था परन्तु फिर भी वे परमाणुवाद के अत्यधिक निकट पहुँच गये थे। जैनियों के अनुसार परमाणु नित्य हैं और सदा एक से रहते हैं। बौद्धों की यह मान्यता थी कि परमाणु एक ही पल रहते हैं और दूसरे ही पल दूसरे परमाणु आ जाते हैं। प्रचीन भारतीय ग्रन्थों में गतिशीलता के विभिन्न नियमों की चर्चा मिलती है। न्याय वैशेषिक में शब्द को 'वीचि-तरंग-न्याय' से बढ़ने वाला बताया गया है। मीमांसकों ने ध्वनि को नाद, स्फोट और शब्द में बाँटा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायनशास्त्र--सिन्धु सभ्यता के काल में ही भारतीयों को लोह, स्वर्ण ताम्र आदि धातुओं का ज्ञान था। छान्दोग्य उपनिषद में सङ्कर धातुओं को बनाने का उल्लेख भी मिलता है। संस्कृत साहित्य में उपलब्ध शब्द तथा पुटपाक, योगवर्तिका, पर्पटी ताम्र और रसामृतचूर्ण उस काल के भारतीयों का इस विषय में ज्ञान सूचित करते हैं। पतंजलि का उल्लेख लौहशास्त्र के रचयिता के रूप में हुआ है। भारतीयों को क्षार बनाने और उनके उपयोग की विधियाँ भी ज्ञात थीं। अनेक धातुओं में सम्मिश्रण इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारत में रसायन शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था।

जीव-शास्त्र--प्राचीन भारत में भी आज की तरह जीव शास्त्र के दो भाग थे—प्राणि शास्त्र और वनस्पति शास्त्र। प्राणिशास्त्र के सम्बन्ध में वैदिक ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। प्राणियों के चार भेद माने जाते थे-अण्डज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज। प्रशस्तपाद से इन्हें दो भागों में बाँटा है—योनिज और अयोनिज। प्राणियों में अश्व, गज, गौ का विशेष उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारत में वनस्पति शास्त्र की भी काफी उन्नति हुई थी। वैदिक काल से ही भारतीयों की यह मान्यता थी कि पेड़ पौधों में भी जान होती है। महाभारत में वनस्पतियों के इन्द्रिय ज्ञान का भी उल्लेख हुआ है।

आयुर्वेद और चिकित्सा—आयुर्वेद की उत्पत्ति वैदिककाल में ही हो चुकी थी। अथर्ववेद में अनेक रोगों के नाम, लक्षण, कीटाणुओं और हड्डियों का उल्लेख किया गया है। शल्य विद्या का भी भारतीयों को ज्ञान था। आयुर्वेद के क्षेत्र में चरक, धनवन्तरि, सुश्रुत और जीवक आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। बच्चों के रोग का ज्ञान, अस्थियों, शिराओं, स्नायु संस्थानों का ज्ञान टूटी हुई हड्डियों का ज्ञान भी प्राचीन काल में भारतीयों को था। इसके अतिरिक्त पशु-चिकित्सा से भी भारतीय भलीभाँति परिचित थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीन भारत में विशेष उन्नति हुई थी।

प्रश्न 36—आधुनिक युग में विज्ञान की प्रगति पर टिप्पणी लिखिये। आधुनिक काल में वैज्ञानिक विकास की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

भारत में वैज्ञानिक विकास की जो धारा प्राचीन युग में बह रही थी वह मुगल काल में अवरुद्ध सी हो गई। 12वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक वैज्ञानिक क्षेत्र में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। इस अवनति का मुख्य कारण भारतीयों को धर्म सम्बंधी धारणाओं में अतिशय वृद्धि थी। भारतीय रुढ़िवादिता के शिकार हो गये। वे अंधविश्वासों में बुरी तरह जकड़ गये।

अंग्रेजों के भारत आगमन पर वैज्ञानिक क्षेत्र में पुनः उन्नति के आसार देखने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी पु०सं०...1546 भारती पुस्तकालय

को मिले । अँग्रेजों के वैज्ञानिक विकास ने भारत में विज्ञान की उन्नति को विशेष बल दिया । भारतीयों ने यह अनुभव किया कि उनकी दुर्बलता का मुख्य कारण उनका मिथ्याभिमान और पश्चिमी देशों की विज्ञान तथा औद्योगिक उन्नति है । 1876 ई० में 'वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परिषद्' की स्थापना की गई । ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों में वैज्ञानिक विकास के प्रति अभिरुचि न दिखाई । 1897 ई० में सर जगदीश चन्द्र वोस ने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में आश्चर्य जनक खोज की । इससे विश्व के वैज्ञानिकों में भारतीय वैज्ञानिकों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो गई ।

1902 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने बी० एस-सी० और 1908 ई० में एम० एस-सी० परीक्षायें आयोजित कीं । 1913 ई० में टाटा वन्धुओं ने बंगलौर में 'इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ़ साइन्सेज की स्थापना की । शनैः शनैः यहाँ के विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अनुसन्धान की व्यवस्था की गई । शोधकार्य भी तेजी से होने लगे ।

जगदीश चन्द्र वोस ने अपनी खोजों द्वारा विश्व में भारत के मस्तिष्क को वहुत ऊँचा उठाया और वनस्पतियों में जीवन की शोध की । 1902 ई० में यह सिद्धान्त यूरोप में स्वीकार किया गया । सर सी० वी० रमन ने 'रमन किरणें', 'रमन प्रभाव' हीरे आदि में रवों की अस्थिर गति की खोज कर नोवुल पुरस्कार प्राप्त किया । एस० एन० वोस ने आइंस्टीन के सापेक्षिता सिद्धान्त में संशोधन किया । 1902 ई० में प्रफुल्ल चन्द्र राय का 'भारतीय रसायन शास्त्र का इतिहास' पुरस्कृत हुआ और नाइट्रेट की खोज की । शान्ति स्वरूप भटनागर ने भी पारद नाइट्रेट पर खोज कार्य किया । श्री निवास रामानुज ने त्रिकोणमिति में शोध कार्य द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की । बीरवल साहनी ने पोलियोवाटनी को विज्ञान की एक नई शाखा के रूप में प्रस्तुत किया और लखनऊ का बीरवल साहनी इंस्टीट्यूट इस क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले श्री रामानुजम, जगदीश चन्द्र वोस, सर सी० वी० रमन, मेघनाथ साहा, बीरवल साहनी तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के वाद श्रीकृष्णन्, भाभा, शान्तिस्वरूप भटनागर, चन्द्रशेखर आदि को इंगलैण्ड की रायल सोसाइटी का सदस्य बनाया गया । 1940 ई० में भारत सरकार ने 'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद' की स्थापना की । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1948 ई० में पंडित नेहरू के प्रयत्नों से 'वैज्ञानिक अनुसन्धान विभाग' और 'वैज्ञानिक परामर्श दात्री परिषद' की स्थापना की गई । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालायें स्थापित की गईं जिसमें निरन्तर शोधकार्य होने लगा । सैनिक महत्त्व की प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त 'पूना की रासायनिक प्रयोगशाला', 'धनवाद का ईंधन प्रयोगशाला,' 'कलकत्ता का केन्द्रीय शीशा और चीनी के वर्तनों की अनुसन्धानशाला,' 'मद्रास की चर्म अनुसन्धानशाला आदि राजकीय प्रयोगशालायें उल्लेखनीय हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में विज्ञान के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हुई और आज बड़े बड़े वैज्ञानिक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। टेकनिकल इंस्टीट्यूट, नेश लेबोलेटरीज आदि ऐसी संस्थायें हैं जिन पर कोई भी देश गर्व का अनुभव कर सक है। इस वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम ही आज भारत में विभिन्न प्रकार की वस्तु और बड़ी बड़ी मशीनें बन रही हैं।

प्रश्न 37—भारतीय जीवन पर विज्ञान के प्रभाव का निरूपण कीजिये
(गोरखपुर विश्वविद्याल

भारतीय संस्कृति पर विज्ञान का क्या प्रभाव पड़ा है।
(गोरखपुर विश्वविद्याल

"भारतीय संस्कृति के कुछ आदर्श आधुनिक वैज्ञानिक यु में भी उतने ही मूल्यवान हैं जितने कि प्राचीन काल में थे। इस कथन की विवेचना कीजिये।
(गोरखपुर विश्वविद्याल

"आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियाँ भारतीय संस्कृति के मू आदर्शों को नष्ट नहीं कर सकती हैं।" क्या आप इ कथन से सहमत हैं ? **(गोरखपुर विश्वविद्याल**

भारतीय समाज और संस्कृति पर विज्ञान का प्रभाव—आधुनिक यु की वैज्ञानिक प्रगति ने भारतीय समाज और संस्कृति पर अपना व्यापक प्रभाव डाल है। यह प्रभाव सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ रह है। समाज से अन्धविश्वास शनैः शनैः दूर हुये है और भारतीयों की भाग्यवादी भावन में कमी आई है। भारतीयों में रचनात्मक प्रवृत्ति का समावेश भी विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप हुआ है और जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया है। भारती समाज की वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था ढीली पड़ गई है। छुआ-छूत का भेदभा पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया है। भारत में कानून द्वारा छुआ-छूत को अपराध घोषित किया गया है। वैज्ञानिक प्रकृति के फलस्वरूप भी यहाँ स्वतंत्रता और समान की भावना व्याप्त हुई है। धर्म का प्रभाव समाज पर से कम हो गया है। लोग प्राच रुढ़ियों को तोड़ने में लगे हैं।

विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप मानव जीवन को सुखमय बनाने का प्रया किया गया है। आज मनोरंजन के विभिन्न साधन जैसे टेलिविजन, रेडियो-सि आदि उपलब्ध हैं। समस्त देश की दूरी कम हो गई है और अब एक स्थान से स्थान पर आसानी से जाया जा सकता है। सुविधाओं के अनेक साधन बढ़े हैं।

विज्ञान की प्रगति ने औद्योगिक और व्यापारिक प्रगति को बढ़ावा दिया है देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा है और आज बहुत सा सामान भारत में बन लगा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक है कि भारतीय समाज और संस्कृति को विज्ञान की बहुत बड़ी देन है साथ ही यह भी स्वीकार किया जायगा कि विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप ...तीय समाज में कुछ कुरीतियाँ भी आ गई हैं। पारिवारिक विघटन तेजी से हो ...है। प्रगति की दौड़ में अन्धे होकर भारतीय अपने प्राचीन आदर्शों को भूलते जा ...हैं। जीवन का एक मात्र लक्ष्य धन कमाना हो गया है। धार्मिक विश्वासों, और ... सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप समस्त समाज पूँजीपति और श्रमिक वर्ग ...दलता जा रहा है और शोषण का बाजार गर्म होता जा रहा है। आध्यात्मिकता ...कता में बदल रही है और लोग नास्तिक से होते जा रहे हैं। जीवन के मूल्य ...ते जा रहे हैं और इसके साथ साथ हमारा सांस्कृतिक गौरव नष्ट होता जा ...है।

भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों की समाप्ति नहीं—यह ठीक है कि ...न की प्रगति ने भारतीय जन जीवन को अवश्य ही प्रभावित किया है और हमारे ... और संस्कृति पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। परन्तु यह भी निर्विवाद ...है कि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों को परिवर्तित ... में सफल नहीं हुई है और कदाचित वह कभी सफल होगी भी नहीं। ...भी भारत में आध्यात्मिकता को विशेष महत्व दिया जा रहा है। आज भी राज-...क, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को लेकर धर्म की दोहाई दी जाती है। आज ...रतीय परलोक की भावना में अधिक विश्वास करते हैं। भारतीय संस्कृति के ...प्रेम और अहिंसा जो मूल आदर्श हैं उन्हें वैज्ञानिक प्रगति बदलने में सफल नहीं ...ी है। जहाँ पाश्चात्य देश प्रतिस्पर्धा और तनाव का वातावरण उत्पन्न कर ...वहाँ भारत आज भी विश्वबन्धुत्व और विश्व-प्रेम का नारा बुलन्द कर रहा ...हिष्णुता की जो भावना भारतीय संस्कृति का आदर्श रही है वह आज भी ...ी जा सकती है। भारत में सभी धर्मों के अनुयायी मिल जुल कर साथ साथ ... और सभी को अपने-अपने धर्मों का विकास करने की खुली छूट है। इस ...आज भी चिन्तन की प्रधानता है। लोककल्याण की भावना से आज भी लोग ...त हैं और एक दूसरे के दुखदर्द में हाथ बँटाने के लिये तैयार रहते हैं। आज ...रतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों को अपने में आत्मसात करने की क्षमता ...है। भारतीय संस्कृति के विषय में यह कहा जाता है कि वह जीवन्त संस्कृति ...का शरीर बदलता रहता है परन्तु उसकी आत्मा एक ही रहती है। आज ...कथन पूर्णतया सत्य है। हमारी संस्कृति का रूप वैज्ञानिक प्रगति के फल-...बदल रहा है परन्तु उसकी आत्मा में कोई भी परिवर्तन होने वाला नहीं है।

———

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान
तिथि...
पु०सं०...1346
भारती पुस्तकालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.